॥ ओ३म् ॥

भवानीलाल भारतीय

पुराणालोचन ग्रन्थमाला पुष्प ५

संख्या .... वे. ४२
तिथि ....
पुस्तकालय ..2342....

लिङ्गपुराण की आलोचना

[illegible]
पुस्तक संख्या 3546
विषय ..... ख/पु .....

लेखक—

श्रीयुत भीमसेन विद्यालङ्कार

भारतीय पुस्तक[illegible]
जोधपुर
पुस्तक संख्या ......

संपादक—

श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी

गुरु विरजानन्द दण्डी

दयानन्द उपदेशक विद्यालय,

[illegible]
प्र. परिग्रहण क्रमांक 2447

गुरुदत्त भवन, लाहौर

दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रथमावृत्ति] संवत् १०५ [मूल्य ।)

प्रकाशक—
म० राजपाल, एण्ड सन्स,
आर्य्य पुस्तकालय, लाहौर।

वैदिक धर्म सम्बन्धी सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—
म० राजपाल, एण्ड सन्ज़,
आर्य्य पुस्तकालय,
हस्पताल रोड, लाहौर।

मुद्रक—
बाबू जगतनारायण बी० ए०
'विरजानन्द प्रेस'
मोहनलाल रोड, लाहौर

* ओ३म् *

लिंग पुराण की आलोचना

(संपादकीय वक्तव्य)

विष्णुपुराण के मत से अष्टादश महापुराणों में लिंग पुराण ग्यारहवां हैं, शिवपुराण, श्रीमद्भागवत, नारदपुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, वराहपुराण, मत्स्य पुराण, पद्मपुराण तथा स्वयं लिंगपुराण का भी ऐसा ही मत है। देवी भागवत की दृष्टि से यह पंद्रहवां हैं, कूर्म्मपुराण की दृष्टि से यह दसवां है, किन्तु मार्कण्डेय पुराण की दृष्टि से यह महापुराण ही नहीं। बहु सम्मति से इसका महापुराण होना तो सिद्ध हो जाता है, किन्तु मार्कण्डेय पुराण का अनादर तथा अप्रामाण्य होता है, यदि उस को प्रामाणिक माने, तो अन्यों को अप्रमाण मानना होगा। पुराण भक्तों को इस आपत्ति के वारण करने का कोई उपाय सोचना चाहिए।

वर्त्तमान लिंग पुराण असली नहीं।

मत्स्य में लिखा है—

"यत्राग्निर्लिंगमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः।
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थं माग्नेयमधिकृत्य च॥
कल्पान्तं लिङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणास्वयम्।
तदेकादशसाहस्रं फल्गुन्यां यः प्रयच्छति॥

जिस ग्रन्थमें देव महेश्वर ने अग्निलिंगमध्यस्थ होकर अग्नि कल्पान्त में धर्म्म, अर्थ, कर्म्म और मोक्षार्थ कथा प्रकाश की थी, एकादश सहस्रयुक्त वह पुराण ही ब्रह्मा द्वारा लिंग नाम से वर्णित हुआ है॥" (अष्टादश पुराण दर्पण २७ पृष्ठ)

नारद पुराणमें भी यह अग्निकल्प, सम्बन्धी कहा गया है—

यच्च लिंगाभिधं तिष्ठन् वह्निलिंगे हरोऽभ्यधात्।

मच्च धर्म्मादि सिद्धयन्त अग्निकल्पकथाश्रयम् ॥

यह श्लोक भी अ० पु० द० २७६ पुराण से लिया गया है।

किन्तु वर्त्तमान लिंगपुराण में 'ईशानकल्प' सम्बन्धी कह है।" अष्टादशपुराण दर्पण" कार श्रीयुत पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र जी भी ऐसा मानते हैं।

पृष्ठ २८१ २८२ पर वे लिखते हैं—

"प्रचलित लिंगपुराण में ही लिखा है—

ईशान कल्पवृत्तान्त मधिकृत्य महात्मना।

ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लैङ्गमुत्तमम् ॥

ईशान कल्प वृत्तान्त प्रसंग में पूर्व काल में महात्मा ब्रह्मा द्वारा जो पुराण कथित हुआ था, ॥

इस से स्पष्ट सिद्ध है, कि मत्स्य पुराण तथा नारद पुराण को जो लिंगपुराण ज्ञात था, वह प्रचलित लिंग पुराण से अवश्य भिन्न था श्रीयुत अष्टादशपुराण दर्पण के कर्त्ता श्रीयुत पं० ज्वाला प्रसाद जी को यह बात खटकी है वे अ० पु० द० पृष्ठ २८२ पर लिखते हैं—

" पूर्व में ही कह चुके हैं, मात्स्य और नारदीयमत से अग्नि कल्प प्रसंग में लिंग पुराण और ईशान कल्प प्रसंग में अग्निपुराण वर्णित हुआ है। मत्स्य पु० ५३ अ० एसे स्थलमें ईशान कल्पाश्रयो लिंग एक है वा नहीं, अधिक सम्भव है बौद्धप्रभाव खर्व और ब्राह्मण्यप्रभाव के अभ्युदय के साथ जब पुराणों का पुनः संस्कार होता था, उस समय आग्नेय पुराणोक्त ईशान कल्पकी कथा आकर लिंग पुराणों में प्रविष्ट हुई है और अग्निकल्प का प्रसंग संभवतः अग्निपुराणका विषयी

भूत समझकर लिंग में अग्निकल्प की कथा का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया।"

पण्डित जी ने केवल लिंग पुराण का ही खण्डन नहीं किया अपितु साथ ही अग्निपुराण को भी नकली बता दिया है। इतना ही नहीं, पण्डित जी और भी स्पष्ट लिखते हैं—

"तथापि परवर्त्ती कालमें शैवलोगों के अभ्युदयमें बीच बीचमें शिव की प्रशंसा और विष्णु की कथा भी निवेषित हुई है। आदि पुराण समूह किसी २ विशेष सम्प्रदाय की सामग्री होने पर भी उस में संप्रदाय वा देवता विशेष की निन्दा की बात नहीं समझी जासक्ती। संप्रदायकी द्वैषा द्वैषी में पुराणों में भी एसी विद्वैषसूचक श्लोकावली बहुत पीछे प्रबिष्ट हुई थी। ऐसे स्थल में सामान्य प्रक्षिप्त श्लोक समूह छोड़ने पर इस लिंग पुराण को एक अति प्राचीन पुराण कहा जा सकता है।" पृ० २८२

पण्डित जी ने यहां एक चतुरता करने का प्रयत्न किया है। विष्णु की निन्दा न लिख कर 'विष्णु की कथा शब्दलिखेहैं, ताकि लोग समझें, कि बिष्णु की कथा—उत्कर्ष द्योतक कथा इस पुराण में है, किन्तु इन की पूर्वापर बाक्य रचना ने इन की चतुराई का भण्डा फोड़ कर दिया है। क्या ही अच्छा होता, यदि पण्डित जी 'प्रक्षिप्त श्लोकावली' यहां लिख देते। अस्तु। इतना भी बहुत है, जो पुराणों में प्रक्षेप को स्वीकार किया है। क्यों कि जब 'प्रक्षेप' को निकालने लगेंगे, तो १८ पुराणों के स्थानों में केवल एक और वह भी छोटा सा पुराण शेष बच रहेगा। श्री पण्डित जी ने इसी पर सन्तोष नहीं किया, इसके आगे वह लिखते हैं—

"अरुणाचलमाहात्म्य गौरीकल्याण, पंचाक्षर माहात्म्य,

रामसहस्र, रुद्र माहात्म्य और सरस्वती इत्यादि कई छोटी २ पोथी लिङ्ग पुराण के अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त वासिष्ट लैंग नामक एक उप पुराण पाया जाता है। हलायुध का ब्राह्मण सर्वस्व में बृहल्लिंग पुराण वचन उद्धृत हुआ है, किन्तु अब यह पुराण नहीं देखा जाता।" पृ० २८२

इन सारे उद्धरणों को देने का प्रयोजन केवल इतना मात्र दिखाना है, कि जिस किसी भी प्रकार से पुराणों के मण्डन के लिये तत्पर हुए पण्डित जी को भी स्वीकार करना पड़ा है, कि पुराणों में गड़बड़ है, पुराण के कई श्लोक पुराणों में से निकल गये हैं, और कई और डाल दिये गये हैं। जब ऐसी अवस्था है तो इन में प्रतिपादित धर्म असली पुराण संहिता के हैं, क्यों न इन सब को त्याग कर केवल वेद को धर्म ग्रन्थ मानें, जिस में एक अक्षर का भी भेद नहीं आया।

प्रकृत आलोचना कल्याण (बम्बई) की छपी पुस्तक पर से की गई है-उसके अन्त के—

'इदं पुस्तकं कल्याण नगर्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन गंगाविष्णुना स्वकीये "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" (स्टीम) यन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम्। सम्बत् १९८१ शक १८४६

विशेष कारणों से यह आलोचना संक्षिप्त बनी है। बहुत से विषय तो इसमें नहीं आये।

जिस भावना-आर्य जाति में सुसंस्कार उत्पन्न करने की सम्भावना-से यह आलोचना लिखी गई है, उसी से सज्जन पाठक इसे स्वीकार करें।

विद्वदनुचर

वेदानन्दतीर्थ

लेखक के दो शब्द ।

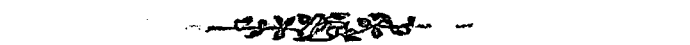

लिङ्गपुराण की समालोचना को पाठकों के सामने उपस्थित करते हुए—इस समालोचना के प्रेरक भाव के विषय में एक दो शब्दों का कहना अप्रासङ्गिक नहीं है।

भारतवर्ष में कई सदियों से—पुराण भी वेदों की भांति स्वतः सिद्ध माने जाने लगे थे। विद्वान् लोग इन की समालोचना करना उचित नहीं समझते थे परिणामतः यह भी वेदों की भांति स्वतः सिद्ध तथा धर्मग्रन्थ माने जाने लगे।

ऋषि दयानन्द ने इस प्रथा में परिवर्तन किया। ऋषि दयानन्द ने पुराणों को तर्क की कसौटी पर परखा और जनता में इस लहर को प्रचलित किया कि पुराण भी लौकिक संस्कृत साहित्य की भांति मनुष्य कृत हैं, और समालोचना के विषय हो सकते हैं।

ऋषि दयानन्द ने दिग्दर्शन कराने के लिये सत्यार्थप्रकाश में पुराण साहित्य की समालोचना की। अब दिन दिन यह लहर स्वयं प्रबल हो रही है। अभी तक आर्य विद्वान तथा उपदेशक केवल मात्र ऋषि दयानन्द कृत पुराण समालोचना के आधार पर ही पुराणों की छानवीन करते थे। अब सनातन धर्मी पौराणिक पंडित भी पुराणों की समालोचना करने लगेहैं।

संस्कृत विद्या प्रचार के साथ साथ आर्यसमाज में भी

संस्कृत मूल ग्रन्थों के अनुशीलन करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह पुराणालोचन ग्रन्थमाला इस प्रवृत्ति की प्रदर्शक है। यह समालोचना "वादे वादे जायते तत्ववोधः" "वाद से यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है" की भावना से प्रेरित होकर लिखी गई है।

मैं चाहता हूं कि इस समालोचना को पढ़ कर लिङ्ग पुराण को धर्म ग्रन्थ—या एतिहासिक ग्रन्थ मानने वाले सज्जन भी लिङ्ग पुराण का स्वयं अनुशीलन करें और सचाई को जान कर उस का ग्रहण करें।

यह समालोचना आर्यसमाज में संस्कृत साहित्य के अनुशीलन की प्रवृत्तिको बढ़ाने के लिये की गई है। यदि किन्हीं श्रीमानों के हृदयों में इस समालोचना को पढ़ कर, मूल संस्कृत ग्रन्थों के पढ़ने की आकांक्षा पैदा हुई, तो मैं अपने यत्न को सफल समझूंगा।

भीमसेन विद्यालङ्कार
लाहौर।
२ माघ १९८६

विषय सूची

पृ० संख्या

लेखक के दो शब्द ... ... १—२

सम्पादकीय वक्तव्य क. ख. ग. घ.

पुराण शब्द की विवेचना ... ... १—६ तक

पौराणिक सम्प्रदाय में लिङ्ग पुराण का स्थान ... १०—११

लिङ्गपुराण का ऐतिहासिक महत्व ... ... ११—१२

लिङ्ग पुराण की आलंकारिक व्याख्या ... १२—४४

लिङ्ग पुराण का संस्कृत साहित्य पर प्रभाव ... ४५—४८

लिङ्ग पुराण की रचना में दोष ... ... ४८—५६

विचारणीय तथा माननीय स्थल ... ... ६०—६८

———

ओ३म्

पौराणिक सम्प्रदाय

में

लिंग पुराण

का

स्थान ।

पुराण शब्द की विवेचना ।

संस्कृत साहित्य में पुराण शब्द का इतिहास विशेष महत्व रखता है। पुराण शब्द का इतिहास जाने विना, किसी भी पुराण की समालोचना करना कठिन है। पुराण शब्द का प्रयोग वेदों, ब्राह्मणों तथा काव्यों में भिन्न २ अर्थों में पाया जाता है। वेद संहिताओं में पुराण शब्द का 'अष्टादश पुराण ग्रन्थ' अर्थ सम्भव ही नहीं हो सकता। क्योंकि सब विद्वान् इस बात में सहमत हैं कि वैदिक साहित्य व संस्कृत साहित्य में वेद संहिताएं, रचना काल या आविर्भाव काल की दृष्टि से सबसे पुरानी हैं। संस्कृत साहित्य के किसी भी ग्रन्थ में-ब्राह्मणों या पुराणों में यह नहीं लिखा कि वेदों का आविर्भाव अब हुआ है। वेद संहिताओं के आविर्भाव के समकाल में किसी भी प्रकार के पुराण ग्रन्थ के अस्तित्व को आज तक, जहां तक हमारा ज्ञान है, किसी भी

विद्वान् ने स्वीकार नहीं किया। इसलिए यदि कोई सम्प्रदायी पौराणिक भाई वेद के किसी मन्त्र से पौराणिक गाथाओं का निर्देश लेकर पुराणों के प्राचीनत्व को सिद्ध करना चाहे, तो उनके समक्ष उपरिलिखित स्थापना करनी चाहिए।

कई जैनी भाई वेद में 'ऋषभ' शब्द का प्रयोग देख कर, जैन सम्प्रदाय की प्राचीनता के साथ २ जैन पुराणों के प्राचीनत्व को भी सिद्ध करने का यत्न करते हैं। उनके प्रयत्न का उत्तर भी पूर्वोक्त युक्ति व तर्क से दिया जाना चाहिए। भाव यह है कि वेद संहिताओं में आए पुराण शब्द का किसी भी प्रचलित पुराण ग्रन्थ से सम्बन्ध नहीं है। *

वेदों के बाद ब्राह्मणों, उपनिषदों, मनु धर्मशास्त्र तथा रामायण और महाभारत में आए हुए पुराण शब्द के अर्थ पर विचार करने की आवश्यकता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट या पठित पुराण शब्द का अर्थ क्या है इसके सम्बन्ध में अपनी राय न देकर, हम सायणाचार्य के शब्दों में ही इसका अर्थ पाठकों के सामने रखेंगे।

---

* अष्टादश पुराण दर्शन में "ऋचा सामानि छंदांसि पुराणं यजुषा सह"। अथर्व. ११।७।२४।

तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराशंसीरिति ॥ अथर्व का. १५।म.

इन मन्त्रों में आए हुए पुराण शब्द द्वारा पुराणों की प्राचीनता सिद्ध करने का यत्न किया गया है। पुराण शब्द की यौगिक व्युत्पत्ति 'पुरा नवश्च' से की जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि जो सदा एक सा रहे। प्रथम

ऐतरेय ब्राह्मण की व्याख्या करते हुए, उपक्रम में सायणाचार्य लिखते हैं:—

"देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासाः, इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्।"

इसका अर्थ इस प्रकार है—

'देवासुरा संयत्ता आसन्निति' आदि मनुष्य की म वैज्ञानिक वृत्तियों का वर्णन करने वाले वाक्य इतिहास जाते हैं। क्योंकि मनोवैज्ञानिक सचाईयाँ मनुष्य के जीवन म इतिहास की अन्य घटनाओं की तरह बार बार दोहराई जाती हैं। 'इदं वा अग्रे —' आदि सृष्टि प्रक्रिया तथा सृष्टि रचना का वर्णन करने वाले वाक्य पुराण कहे जाते हैं।"

सायणाचार्य भी यही मानते हैं कि वेदों और ब्राह्मणों में जहां २ पुराण शब्द आता है उसका अर्थ सृष्टि ज्ञान वर्णन करने वाले वाक्यों से है, किसी ग्रन्थ विशेष से नहीं।

उपनिषदों में—बृहदारण्यक तथा छान्दोग्यमें ही पुराण शब्द का प्रयोग विशेष रूप से मिलता है। परन्तु इन उपनिषदों के ब्राह्मणों के साथ विशेष रूप से सम्बद्ध होने से पूर्व सा

मन्त्र में "पुराणं यजुषा" शब्द का अर्थ नित्य एकरस यजुर्वेद से है।

दूसरे मन्त्र भाग में भी एक वचन व जाति वाची पुराण शब्द का भाव किसी ग्रन्थ विशेष से नहीं लिया जा सकता। यह एक विशेष प्रकार के ज्ञान का निदर्शक है।

अर्थ ही समझना चाहिए। अन्य उपनिषदों में कठ आदि में पुराण शब्द का प्रयोग—जीवात्मा के लिए भी किया गया है। उनमें भी ग्रन्थ विशेष को लक्ष्य करके पुराण शब्द का प्रयोग नहीं किया गया।

उपलभ्यमान मनुस्मृति में भी पुराण शब्द आजकल के प्रचलित अर्थों में प्रयुक्त नहीं किया गया। मानव धर्म शास्त्र का निर्माण ब्राह्मणों से पूर्व या उनके समय में ही हुआ था। इसके बाद जब हम वाल्मीकि रामायणका अध्ययन करते हैं तो वहां पुराण शब्द के सम्बन्ध में हमें इस प्रकार का परिचय प्राप्त होता है:—

उपलभ्यमान वाल्मीकि रामायण में, लौकिक पुराणों में प्रचलित कथाओं का वर्णन तो मिलता है परन्तु सारे रामायण ग्रन्थ में ग्रन्थ वाचक पुराण शब्द का पाठ कहीं नहीं है। जिस समय हनुमान् सुग्रीव का राजदूत बन कर, रामचन्द्र जी के पास आता है, उस समय हनुमान् की विद्वत्ता का वर्णन करते हुए वेदों और व्याकरणादि शास्त्रों के नामकीर्तन के साथ हमें पुराण शब्द का पाठ नहीं मिलता। वाल्मीकि रामायण का माहात्म्य दिखाते हुए, आम काव्य शब्द से ही उसकी प्रशंस की है, पुराण ग्रन्थों में उसकी परिगणना नहीं की गई। शिव पुराण आदि की कथाएं वाल्मीकि रामायण में मिलती हैं पुराणान्तर्गत कथाओं और रामायणान्तर्गत कथाओं के संविधान की तुलना करने से पता लगता है कि रामायण के काव्य

लेखक ने इन कथाओं को लौकिक इतिहास के ढंग पर वर्णन किया है। पुराणों में कथाओं के नायक को ईश्वरीय अवतार का रूप दिया गया है। राम का चरित्र वर्णन गुणशाली पुरुष की भांति किया गया है, अवतारी पुरुष समझ कर उसका वर्णन नहीं किया गया। इसलिये वाल्मीकी रामायण द्वारा, प्रचलित पराणों के महत्व को सिद्ध करना ठीक नहीं।

रामायण के बाद, महाभारत का इतिहास या महाकाव्य हमारे सामने उपस्थित होता है। महाभारत के तीन रूप हैं। प्रथम रूप का नाम "जय" है। इसके लेखक व्यास थे। यही जय नामक ग्रन्थ भारत युद्ध का वर्णन करता है। दूसरा रूप "भारत" नाम से प्रचलित होकर प्रसिद्ध है। इसके संग्रह कर्ता या बनाने वाले व्यास के शिष्य वैशम्पायन थे। तीसरे रूप का नाम "महाभारत" है। इसके रचयिता सौति थे। जय और भारत में पौराणिक गाथाओं की सत्ता स्वीकार करने के लिये कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। 'जय' श्लोक बद्ध ग्रन्थ था।

एतावत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना।
यथावत्सूतपुत्रेण लोम हर्षणिना ततः
उक्तानि नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु ॥
(आ-अ-२-२४)

व्यास ने सौ पर्व के ग्रन्थ का निर्माण किया। उसके बाद नैमिषारण्य में सूत पुत्र लोमहर्षणि ने १८ पर्वों का निर्माण किया।

इस श्लोक से सिद्ध होता है कि वर्तमान समय के १८ पर्व सौति ने बनाये हैं, भारतीय संस्कृत-साहित्य के विद्वान् इस बात पर सहमत हैं। संस्कृत साहित्य के प्रचलित रीति रिवाज़ इसके समर्थक हैं कि सौति की महाभारत से ही वर्तमान समय के १८ पुराणों का विकास हुआ है। व्यास और भारत के कर्ता (जनमेजय के समकालीन) वैशम्पायन के समय पौराणिक धर्म की उत्पत्ति हुई थी। अतः वह उस धर्म के ग्रन्थों की रचना नहीं कर सकते।

परन्तु जैन धर्म तथा-बौद्ध धर्म के प्रचार के बाद जब वेद निन्दक लोगों ने रही सही भारतीय धार्मिक प्रथाओं को नष्ट करने का यत्न किया, उस समय के विद्वान् ब्राह्मणों ने लोगोंकी प्रवृत्तियोंको देख कर,जैनियों तथा बौद्धों के अनुकरण में पुराणों और अवतारों की कल्पना की। जैन तथा बौद्ध लोगों ने जिन नये साधनों द्वारा वैदिक धर्म की निन्दा करके, अपने विचारों को फैलाने का उपक्रम बांधा था, ब्राह्मणों ने भी वही ढंग स्वीकार किया। भाव यह है कि जैन तथा बौद्ध धर्म के बाद पौराणिक धर्म की सृष्टि हुई। तभी पुराणों की रचना, या उनका महाभारत में संनिवेश हुआ। प्रसिद्ध विद्वान् श्री नरसिंह चिन्तामणि वैद्य ने भी अपनी 'महाभारत मीमांसा' पुस्तक में यही निर्णय किया है। वर्तमान युग के अद्वितीय समन्वयवादी आचार्य दयानन्द ने भी सत्यार्थ प्रकाश में पौराणिक धर्म तथा पुराणों की रचना के सम्बन्ध में ऐसे ही विचार प्रकट किए हैं। ऋषि

दयानन्द व्यास व वैशम्पायन को पुराणोंका कर्ता नहीं मानते। व्यास भगवान् ने जिन वेदान्त सूत्रों की रचना की है उनमें भी पुराणों का नाम-निर्देश कहीं दिखाई नहीं देता। गीता के दार्शनिक विचारों वाले श्लोकों में भी (जो कि महा भारत समुद्र में उज्वल रत्नों की भांति चमक रहे हैं) पुराणों का नाम निर्देश कहीं भी दिखाई नहीं देता। श्री कृष्ण भगवान् कहते हैं कि 'मैं वेदों में साम वेद हूं, पाण्डवों में धनंजय हूं।' परन्तु यह कहीं नहीं कहा कि मैं भागवत हूं या शिवपुराण। सारे विवेचन का निचोड़ यह है कि भारत युद्ध के समय इस देश में पुराण नाम से कोई धर्म-ग्रन्थ प्रचलित नहीं थे।

भारतीय युद्ध के बाद, संस्कृत साहित्य में शुक्र नीति और चाणक्य कृत कौटल्य-अर्थ शास्त्र तथा कामन्दकीय नीति शास्त्र भारतीय विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

कौटल्य अर्थ शास्त्र में पुराण नाम से व्यवहृत ग्रन्थ को इतिहास शब्द के अन्तर्गत समझा जाता था। "पुराण-मितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीति-हासः" कौटल्य अर्थशास्त्र पृ० १० वृद्ध संयोग प्रकरण में:—

"पुराण इतिवृत्त धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र आख्यायिका उदा-हरण यह सब विचार इतिहास शब्द के अन्तर्गत हैं।"

शुक्र नीति के प्रथम अध्याय में यह श्लोक विचारणीय है-

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रं पुराणानि त्रयीदं सर्वमुच्यते ॥ १५५
इतिहासाः पुराणानि स्मृतयो नास्तिकं मतम् ।

श्लोक २६ शुक्र अध्याय चतुर्थ, तृतीय प्रकरण।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं यस्मिन्पुराणं तद् विकीर्तितम् ॥

शु० अ० ४। तृ. प्रकरण श्लो०५३ ॥

शुक्र नीति में आए पुराण शब्द का अर्थ श्लोक ५३ से हो जाता है। सृष्टि प्रलय वंशावलियां मन्वन्तर आदि का जिस में वर्णन हो वह पुराण है।

अमर कोष प्रथम काण्ड शब्दादि वर्ग में "पुराणं पंच-लक्षणम्" शब्द से पता लगता है कि इस समय पुराण शब्द ग्रन्थवाचक अर्थ में प्रयुक्त होने लग गया था। परन्तु आश्चर्य इस बात पर होता है कि अमरकोष में वर्तमान समयमें प्रचलित १८ पुराणोंमें से किसी एक पुराणका नाम भी नहीं लिखा गया। यह आश्चर्य तब और भी अधिक बढ़ जाता है जब हम इसी कोष के प्रथम काण्ड के प्रारम्भ में ही पुराणों में वर्णित देवी देवताओं के नाम देखते हैं। इन देवी देवताओं में पौराणिक देवी देवताओंके अलावा 'जिन' और 'बुद्ध' का नाम भी लिखा गया है। मालूम यह होता है कि अमर-कोष का निर्माण उस समय हुआ था जब भारत के ब्राह्मण

धीरे २ जैनों और बौद्धों के अनुकरण में देवी देवताओं की कल्पनाएं कर रहे थे। अमरकोष के लेखक अमरसिंह विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। गुप्त वंश के इस विक्रमादित्य ने उज्जैनी में प्राचीन वैदिक धर्म को प्रचलित करने के लिए, संस्कृत साहित्य को जीवित जागृत बनाने का यत्न किया था। हमारी सम्मति में वर्तमान समय में उपलभ्यमान पुराणों का निर्माण इसी गुप्त वंश से प्रारम्भ होता है।

निश्चित सदी की निश्चित तिथि निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। परन्तु यह कहने से हमें जरा भी संकोच नहीं कि गुप्त वंश के शासन काल के बाद ही भारत वर्ष में पौराणिक साहित्य का जन्म हुआ था। सौति ने महाभारत के १८ पर्वों का निर्माण करके, पीछे आने वाले लेखकों के लिये उदाहरण पेश कर दिया था। महाभारत की भांति पुराणों में भी संसार भर की सब चीजें मिल जाती हैं। इसी समय से जैन आदि मत मतान्तरों के मुकाबले में इन ग्रन्थों को धार्मिक ग्रन्थ का स्थान प्राप्त हुआ।

इसी समय जैन तथा बौद्ध साहित्य के प्रचार के कारण वेद विद्या के लुप्त होने पर, वेद भाषा को भूल जाने पर, प्राचीन वैदिक धर्म के विद्वानों को पुराणों के निर्माण करने की आवश्यकता हुई। इसी समय से वेदों के स्थान पर पुराणों को धर्म ग्रन्थ का रूप दिया जाने लगा। यदि पुराणों को धर्म-ग्रन्थ न मानकर साहित्य के मिश्रित विषयों का विवेचक ग्रन्थ माना जाय तो हमें कोई आपत्ति नहीं।

ऋषि दयानन्द ने भी पुराणों का जो खंडन किया है उस का भाव यही है कि भारतवासी या विचारशील सज्जन पुराण को श्रुतिस्थानाय या श्रुतिसमकक्ष धर्मग्रन्थ न मानें। हमारे इस विवेचन का उद्देश्य यही है कि लिङ्ग पुराण सम्बन्धी अन्तरंग तथा बाह्य प्रमाणों से जनता के सामने यह बात रखें कि लिङ्गपुराण धर्म ग्रन्थ है या नहीं। इस सामान्य विवेचना द्वारा हमने सामान्यतया सब पुराणों के विषय में विचार किया है। अब हम लिङ्ग पुराण के विषय में विशेष विचार करेंगे।

पौराणिक सम्प्रदायोंमें लिंग पुराण का स्थान

भागवत आदि सम्प्रदाय, भागवत पुराण को धर्म ग्रन्थ मान कर अपना कार्य्य निर्वाह करते हैं। लिंग पुराण को अपना धर्मग्रन्थ मानने वाला कोई सम्प्रदाय नहीं दिखाई देता। लिंग पुराण का मुख्य आराध्यदेव शिव है। इन शिव महाराज की अर्चना तथा वन्दना के लिये शिव पुराण के समग्रभाग अर्पित हैं। पौराणिक सम्प्रदायों की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि पौराणिक सम्प्रदायों में लिङ्ग पुराण का विशेष स्थान नहीं है। यदि आज भारत वर्ष से या संस्कृतवाङ्मय से लिङ्ग पुराण ग्रन्थ मिट जाय तो इससे किसी सम्प्रदाय की क्षति नहीं होगी। लिङ्ग तथा शिव लिङ्गकी पूजा करने वाले अपनी भक्ति भावनाओं को शिव पुराण की कथाओं तथा स्तुतियों से तृप्त कर लेंगे।

१८ पुराणों को पौराणिक धर्म के पण्डितों ने सात्विक राजस तथा तामस तीन विभागों में विभक्त किया हुआ है। इस विचार क्रम में लिङ्ग पुराण तथा शिव पुराण को अन्य कुछेक पुराणों के साथ तामस पुराणों की श्रेणी में परिगणित किया गया है।

लिंग पुराण का ऐतिहासिक महत्व

यदि पौराणिक सम्प्रदाय की दृष्टि से लिंग पुराण का कोई महत्व नहीं, तो सम्भावना की जा सकती है कि शायद ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कोई विशेष उपयोग हो, विशेष कर, इस पुराण से भारत के इतिहास पर विशेष प्रकाश डलता है। इस सम्बन्ध में हमने जहां तक इस पुराण का अनुशीलन किया है, हमें इसमें भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में कोई नयी बात या नयी महत्व पूर्ण घटना (जिसका दूसरे पुराणों में वर्णन न हो) क्रम बद्ध वर्णन नहीं मिलता। यह मत केवल हमारा ही नहीं है। पुराणों के आधार पर, भारतीय इतिहास का निर्णय करने का यत्न करने वाले श्रीयुत पारजीटर महोदय भी हमारी स्थापना का समर्थन करते हैं। पारजीटर महोदय Dynasties of the Kali age की भूमिका में लिखते हैं:—

Accounts of the dynasties that reigned in India during the Kali age are found in

Matsya, Vayu. Brahmanda. Vishnu, Bhagvata Garuda and Bhavishya Puranas.

अर्थात् भारत में राज करने वाले राजवंशों का विवरण मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, भागवत, गरुड़, और भविष्य पुराण में उपलब्ध होता है।

इस स्थापना से यह स्पष्ट है कि ऐतहासिक दृष्टि से इन्हीं पुराणों की उपयोगिता है अन्य लिङ्गपुराण तथा शिवपुराण आदि की नहीं। अब शेषात्—लिङ्गपुराण की आलङ्कारिक व्याख्या के सम्बन्ध में ही कुछ विचार करना चाहिए। इसी प्रकार से हम लिङ्ग पुराण की समालोचना कर सकेंगे।

लिङ्गपुराण की आलङ्कारिक व्याख्या

वर्तमान समय में जिस लिङ्ग की मन्दिरों में पूजा होती है, यह लिङ्ग दृश्यमान मूर्ति है। इस की पूजा तथा इसका निर्माण कई प्रकार से किया जाता है। लिङ्गपुराण में इसका विशेष वर्णन उत्तरार्ध में मिलता है। अथवा शिवार्चन-चन्द्रिका, तथा तत्व प्रकाशिका जैसे ग्रन्थों में इसकी पूजा आदि का विशेष विवरण मिलता है। वर्तमान समय में एकलिङ्ग जी के मन्दिरों अथवा नैपाल जैसे पहाड़ी देशों में लिङ्ग पूजा या पशुपति पूजा के विशेष प्रचार के साथ २ पूजनीय धातु या मृत्तिका से बने लिङ्ग मिलते हैं। लिङ्ग पुराण तथा अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से हम इस निश्चय पर पहुंचे

हैं कि लिङ्ग शब्द किसी भाव-विशेष को द्योतित करता है। लिङ्ग पूजा का भाव पत्थर निर्मित लिङ्ग पूजा से नहीं था। प्रारम्भ में लिङ्ग शब्द का प्रयोग, उसका चिन्तन तथा ध्यान दृश्यमान पत्थर निर्मित लिङ्ग से भिन्न पदार्थ के लिए होता था। लिङ्ग शब्द का क्या भाव था इसके सम्बन्धमें हम स्वयं न लिख कर लिङ्ग पुराण के प्रमाण ही पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं:—

ऋषय ऊचुः—

कथं लिङ्गमभूल्लिङ्गे समभ्यर्च्यः स शङ्करः।
किं लिङ्गंकस्तथा लिङ्गी सूत! वक्तुमिहार्हसि।

रोमहर्षण उवाच :—

एवं देवाश्च ऋषयः प्रणिपत्य पितामहम्।
अपृच्छन् भगवल्लिङ्गं कथमासीदिति स्वयम्।
लिङ्गे महेश्वरो रुद्रः समभ्यर्च्यः कथं त्विति।
किं लिङ्गकस्तथा लिङ्गी सोप्याह च पितामहः।

पितामह उवाचः—

प्रधानं लिङ्गमाख्यातं लिङ्गी च परमेश्वरः॥

लिंग पुराण पूर्व भाग १७ अ० के ५ श्लोक

ऋषयः—शङ्कर की लिङ्ग पूजा का क्या भाव है? कौन लिङ्ग है, कौन लिङ्गी है? हे सूत! इसका वर्णन करो।

रोमहर्षणः—एक बार देवोंने प्रजापतिसे यही प्रश्न पूछा था।

पितामह ने उत्तर दिया थाः—प्रधान=प्रकृति लिङ्ग नाम से कही जाती है। परमात्मा लिङ्गी है।

लिङ्गपुराण के टीकाकार भी व्याख्या करने से पूर्व भूमिका में इसी भाव को प्रकट करते हैं—

प्रधानं हि शिवादेवी प्रकृतिः सा निगद्यते ।
पूर्षु देहेषु या शेते पुरुषः पञ्चविंशकाः ॥
जीवो गजाननो ज्ञेयो गणेशस्तु स्मृतो यतः ॥ *

आगे टीकाकार लिखते हैं कि "अस्मिंस्तु शिव एव परमात्मेति बहुशः उक्तं श्रोतृणां स्फुटं भविष्यति" इस लिङ्ग पुराणमें शिव शब्द का प्रयोग परमात्मा के लिये किया गया है यह बात विद्वान् पाठकों को स्पष्ट दिखाई देगी।

लिङ्गपुराण का प्रारम्भ नारद की यात्रा से किया गया है। वर्णन किया गया है कि नारद संगमेश्वर शुक्रेश्वर आदि स्थानों में शङ्कर तथा उसके लिङ्गों की पूजा करके नैमिषारण्य में पहुंचे। वहां देवसभा लगी थी। इतने में रोमहर्षण नाम का सूत उस सभा में पहुंचा। देवों तथा ऋषियों ने रोमहर्षण से लिङ्गपुराण की कथा करने की प्रार्थना की। सूत नारद ब्रह्मादि को नमस्कार कर के लिङ्गोत्पत्ति का वर्णन श्लोकों से करते हैं। यदि हम इन श्लोकों पर विशेष विचार करें तो पता लग जायगा कि सूत या रोमहर्षण जिस लिङ्ग का माहात्म्य

---

* प्रधान, प्रकृति, शिवा यह सब समानार्थक हैं। प्रत्येक देह में रहने वाला पच्चीसवां तत्व आत्मा 'पुरुष' कहलाता है। इसी को जीवात्मा, गणेश और गजानन नाम से कहते हैं।

दिखा रहे हैं वह लिङ्ग आज कल मन्दिरों में उपलब्ध लिङ्ग से बिलकुल भिन्न है। इन श्लोकों के पढ़ने से पता लगता है कि जिस प्रकार आजकल भी साधारण लोग कहतेहैं कि प्राकृतिक जगत् की घटनाएं किसी बड़ी शक्ति का (लिङ्ग) सूचक हैं। उसी प्रकार यहां यह कहा गया है कि नारद ने संगमेश्वर तथा शुक्रेश्वर आदि के दर्शन किये, यह क्षेत्र भी लिङ्ग है।

क्योंकि इन क्षेत्रों के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर, परमात्मा की स्मृति हृदय में जागृत हुए विना नहीं रहती।

सूत उवाचः—

नमस्कृत्य महादेवं ब्रह्माणं च जनार्दनम्।
मुनीश्वरं तथा व्यासं वक्तुं लिङ्गं स्मराम्यहम् ॥१८॥
शब्दब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम्।
वर्णावयवमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम् ॥१९॥
अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
ओङ्काररूपमृग्वक्त्रं सामजिह्वासमन्वितम् ॥२०॥
यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम्।
प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् ॥२१॥
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम् ॥२२॥
प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाधिष्ठितं क्रमात्।

पुनः षोडशधा चैव षड्विंशकमजोद्भवम् ॥२३॥
सर्गप्रतिष्ठासंहारलीलार्थं लिङ्गरूपिणम् ।
प्रणम्य च यथान्यायं वक्ष्ये लिङ्गोद्भवं शुभम् ॥२४॥

लिङ्ग पुराण—पूर्व भाग—अध्याय प्रथम ।

ईशानकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य महात्मना ।
ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लैङ्गमुत्तमम् ॥
ग्रन्थकोटिप्रमाणं तु शतकोटिप्रविस्तरे ।
चतुर्लक्षेणसंक्षिप्ते व्यासैः सर्वान्तरेषु वै ।
व्यस्तेष्टा दशधा चैव ब्रह्मादौ द्वापरादिषु ।
लिङ्गमेकादशधा प्रोक्तं मया व्यासाच्छ्रुतं च तत् ।
अस्यैकादशसाहस्त्रे ग्रन्थमानमिह द्विजाः ।
तस्मात्संक्षेपतो वक्ष्ये न श्रुतं विस्तरेण यत् ॥
चतुर्लक्षेणसंक्षिप्ते कृष्णद्वैपायनेन तु ।
अथैकादशसाहस्त्रैः कथितो लिङ्गसम्भवः ॥

लिंग पुराण अध्याय २

सूत कहता है:—

महादेव, ब्रह्मा, जनार्दन और मुनीश्वर व्यासको नमस्कार करके मैं लिंग का वर्णन करता हूं। यह लिंग ही शब्द ब्रह्म का प्रकाशक है। यही अनेक वर्ण के रूप में अव्यक्त रूप से प्रकट होता है। यह लिंग वेदमय है, ओङ्कारमय है। प्रकृति से परे

प्रलय का कारण है। संसार की सृष्टि तथा प्रलय के लिये ही लिंग रूप धारण करता है।

व्यास ने विस्तृत लक्ष श्लोकों वाले लिंग पुराण की रचना की थी, मैं संक्षिप्त लिंग पुराण की कथा करता हूं।"

प्रथमाध्याय के इन श्लोकों का भाव यह है कि यजुर्वेद आदि के मूल कारण, सृष्टि प्रलय तथा स्थिति के लिये प्रकृति रूप में नाना चित्र रूपों को धारण करने वाले को नमस्कार करके, लिंग पुराण का वर्णन किया गया है। 'षड्विंशकजो-द्भवम्' की व्याख्या करते हुए लिंग पुराण के टीकाकार निम्न लिखित श्लोक से बताते हैं कि उनका ध्येय प्रतिपाद्य विषय कौन है ?

इह षड्विंशको ध्येयो ध्याता वै पञ्चविंशकः।
चतुर्विंशकमव्यक्तं महदाद्यास्तु सप्त च॥
महास्तथा त्वहंकारं तन्मात्रं पंचकं पुनः।
कर्मेन्द्रियाणि पंचैव तथा बुद्धीन्द्रियाणि च।
मनश्च पञ्च भूतानि शिवः षडविंशकस्ततः॥

इस लिंग पुराण में २६ तत्वों से युक्त पुरुष प्रतिपाद्य विषय का ध्येय है। ७ महदादि तत्त्व ५ अहङ्कार तन्मात्रा ५ कर्मेन्द्रियां ५ ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि, आत्मा तथा परमात्मा स्वयं ही इस पुराण में विचारणीय लक्ष्य है।

लिंग पुराण का ध्येय देव परमात्मा है। इसी प्रकार ऊपर के उद्धरण में द्वितीय अध्याय के श्लोकों में 'ईशान कल्प वृत्तान्तम्' श्लोक में बताया है कि ब्रह्मा ने लिंग पुराण का निर्माण ईशान कल्प की सृष्टि का वर्णन करने के लिये बनाया हैं। इस श्लोक के अनुसार लिंग पुराण का प्रतिपाद्य विषय ईश्वर तथा कल्प सृष्टि का वर्णन करना है। वर्तमान प्रचलित लिंग पूजा का कहीं निर्देश नहीं। इस का विषय उद्देश्य में कहीं परिगणन नहीं किया गया।

इन श्लोकों से यह भी पता लगता है कि वर्तमान समय में उपलभ्यमान लिंग पुराण असली लिंग पुराण नहीं। मूल पुराण ब्रह्माने बनाया था, उसका संक्षप व्यास ने किया। वर्तमान पुराण का निर्माण सूत रोमहर्षण ने किया।

इसी वर्तमान लिङ्गपुराण का विषय वर्णन करते हुए ब्रह्मोत्पत्ति तथा व्यासावतार के बाद लिङ्गोत्पत्ति तथा लिङ्गाराधन लिङ्गस्नान का वर्णन किया गया है। इस विषय-क्रम से पता लगता है कि लिङ्गोद्भव लिंगस्तान तथा लिंगाराधन आदि की प्रथाएं ब्रह्मा तथा व्यासावतार के बाद प्रचलित हुई हैं। यदि यह बातें लिंग पुराण की आवश्यक नित्य सनोतन अंग थीं तो इनका वर्णन सब से पूर्व, ब्रह्मोत्पत्ति तथा व्यासावतार से पूर्व होना चाहिए।

विवेचन का भाव यह है कि लिंगपुराण का उपक्रम पत्थरमयी लिंग पूजा से नहीं किया गया। इसका उद्देश्य तथा

प्रारम्भ परमात्मा के सृष्टि-उत्पत्ति स्थिति सम्बन्धी स्वरूप के वर्णन से किया गया है। वर्तमान प्रचलित लिंग पूजा का वर्णन सूत या रोमहर्षण नाम के सूत द्वारा किया गया है। ब्रह्मा तथा व्यास के नाम से प्रचलित लिंग पुराणों को विषय चर्चा में इसका निर्देश नहीं पाया जाता।

सं०—लिंगोत्पत्ति तथा लिंग का स्वरूप क्या है इसका स्पष्ट वर्णन, विष्णु और ब्रह्मा की पारस्परिक लड़ाई के बाद किया गया है। विष्णु और ब्रह्मा आपस में इस बात पर लड़ रहे थे कि दोनों में कौन बड़ा है। इतने में दोनों के सामने एक तत्व प्रकट हुआ। वही लिंग कहा गया है। दोनों में शर्त लगी कि जो इस लिंगका पता लाएगा कि यह कौन है और कहां तक फैला हुआ है, वही बड़ा होगा। विष्णु लिंगका पता लगाने के लिए पाताल की तरफ गया। ब्रह्मा ऊपर की ओर। दोनों को कुछ पता नहीं लगा। दोनों थक गए।

दोनों की तपस्या तथा स्तुति से प्रसन्न होकर लिंग ने दर्शन दिए। इस प्रकरण में लिंग का जो वर्णन किया गया है उस पर विशेष विचार करना चाहिए। इस विवरण से भी यही पता लगता है कि लिंग का अभिप्राय पत्थरके लिंग से नहीं, अपितु परमात्मा से है—

आवयोश्चाभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः॥
एतस्मिन्नन्तरे लिंगमभवच्चावयोः पुरः

विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं च परस्परम् ॥
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् ।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥
अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसम्भवम् ॥
तस्य ज्वाला सहस्रेण मोहितो भगवान् हरिः ॥

लि. पूर्व भाग· १७ अध्याय ३५। श्लोक

विष्णु और ब्रह्मा के सामने आदि मध्य से हीन, चमकता हुआ लिंग प्रकट हुआ। इस अध्याय के पौर्वापर्य प्रसंग के अध्ययन से पता लगता है कि यह प्रकृति की विशेषावस्था का नाम है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि वर्तमान समय में लिंग नाम से पूजनीय पदार्थ का इस से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब दोनों थक गए तब उन्हों ने क्या देखाः—

पृष्टतः पार्श्वतश्चैव चाग्रतः परमेश्वरम् ।
प्रणिपत्य मया सार्धं सस्मार किमिदं त्विति ॥
तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः ।
ओमोमिति सुरश्रेष्ठाः सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः ॥
लिंगस्य दक्षिणे भागे तदा पश्यत्सनातनम् ।
आद्यवर्णमकारं तु उकारं चोत्तरे ततः ॥

लिं. पु. पूर्व. अ. १७, । ५० श्लोक।

भावार्थः-तब विचारने पर पता लगा कि यह ओम् रूप परमात्मा है।'

दोनों ने थक कर, अपने आप को उस महाप्रभु सर्वदेव भव के सामने समर्पित कर दिया। वहां उन्होंने लिंग के दाईं बाईं तरफ वर्णमाला को देखा।

प्रणम्य भगवान् विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः।
ओंकारप्रभवं मन्त्रकलापञ्चकसंयुतम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम्।
मेघाकारमभूद्रूपः सर्वधर्मार्थसाधकम्।
गायत्रीप्रभवं मंत्रं हरितं वश्यकारकम्।
चतुर्विंशति वर्णाढ्यं चतुष्फलमनुत्तमम्
यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चत्रिंशच्छुभाक्षरम्।
कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शाक्तिकं तथा॥

* * * *

सामोद्भवं जगत्पाद्यं वृद्धिसंहारकारणम्॥
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम्।
ईशानमीशमुकुटं पुरुषास्वं पुरातनम्॥

लि. पु. पूर्वभाग १७ अध्याय ८६ श्लोक.

विष्णु ने प्रणाम कर के जब ऊपर देखा तो उन्हें शुद्ध स्फटिक जैसा चमकता हुआ, सब धर्मों से युक्त, सब मन्त्रों का आदि २४ वर्णों वाले चार कलाओं से अलंकृत परमात्मा के दर्शन हुए।

इन श्लोकों में लिंग का जो स्वरूप वर्णन किया गया है वह परमात्मापरक है।

श्री महादेव ब्रह्मा और विष्णु का विवाद इस प्रकार शान्त करते हैं:—

श्रीमहादेव उवाच—

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्त्ता त्वं धरणीपते।
वत्स वत्स हरे विष्णो! पालयैतच्चराचरम् ॥
त्रिधा भिन्नोऽहं विष्णो ब्रह्माविष्णुभवाख्यया
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः ॥
सम्मोहं त्यज भो विष्णो! पालयैनं पितामहम्।
पाद्मे भविष्यति सुतः कल्पे तव पितामह!

महादेव ने कहा—हे प्रिय विष्णो! इस संसार की स्थिति का कारण तुम हो। मैं ही ब्रह्मा विष्णु आदि रूपों में प्रकट होता हूं। इसके बाद से लोगों में लिंग पूजा प्रचलित हुई।

तदा द्रक्ष्यसि माँ चैवं सोपि द्रक्ष्यसि पद्मजः।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ॥
तदा प्रभृति लोकेषु लिङ्गार्च्चा सुप्रतिष्ठिता।
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षात्महेश्वरः ॥
लयन्मल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः।
यस्तु लैङ्गं पठेन्नित्यमाख्यानं लिङ्गसंनिधौ।

स याति शिवतां विप्रो नात्र कार्या विचारणा ॥

श्री लिंग पुराण पूर्वभाग। २१ अध्या० ॥

इन श्लोकों की व्याख्या करते हुए टीकाकार लिखते हैं कि इसके बाद लिंग में परमात्मा के दर्शन होने से लिंग पूजा का प्रारंभ हुआ। लिंग वेदी बनाई जाने लगी। इत्यादि।

परन्तु प्रश्न यह पैदा होता है कि इस सारे वर्णनमें यह कहां लिखा है कि विष्णु और ब्रह्मा के सामने जो लिंग प्रकट हुआ उसके दाएं बाएं ओंकार तथा वर्णमाला थी—उसकी स्मृति में दृश्य मान लिंग बनाए जाते हैं या बनाये जाने चाहियें। इस व्याख्यान के उपसंहार वाक्य से तो यही पता लगता है कि परमात्मा परम लिंग हैं क्योंकि उस में बड़ी से बड़ी शक्तियां लय हो जाती हैं। महादेवी और लिंग वेदी प्रकृति रूप वेदी के अन्दर ही शिव या परमेश्वर प्रकट हुए। इसी वेदी के दाएं बाएं परमात्मा के ज्ञानरूप अक्षर माला प्रकट हुई है इस प्रकार इस विवेचन से भी पाठकों के हृदय में यह बात हो जायगी कि लिंग पूजा का अभिप्राय पुराणों के अनुसार भी प्रस्तर पूजा से नहीं था। इस प्रकरण पर काफी विचार हो चुका है। अब हम निम्न लिखित उदाहरण के साथ लिंग पुराण की आलङ्कारिक व्याख्या को समाप्त करते हैं:—

देवादयः पिशाचान्ता पशवः परिकीर्तिताः।
तेषां पतित्वात्सर्वेशो भवः पशुपतिः स्मृतः ॥

लिंगपुराण पूर्व भाग ७ अ० ५४ श्लो ६

देव लोगों से लेकर पिशाच जाति तक सारी मनुष्य सृष्टि पशु कहलाती है इनका पालक पति होने से परमामा पशुपति कहलाता है।

इस श्लोक में बताया गया है कि शिव या महादेव को पशुपति क्यों कहते हैं। क्योंकि परमात्मा प्राणिमात्र का पति है इसलिये उसे पशुपति कहते हैं। पशुपति के नाम से पुराण वादियों में जो विविध कल्पनाएं प्रचलित हैं वह भी लिंग पुराण के इस श्लोक के अनुसार निराधार हैं।

लिंग पुराण की आलंकारिक व्याख्या तथा आलंकारिक भाव को प्रकट करने वाले अनेक श्लोक तथा संवाद लिंग पुराण में स्थान २ पर पाए जाते हैं। हम ने उपलक्षण मात्र कुछेक का यहां निर्देश किया हैं। आशा है विचार शील पाठक इन पर अधिक विचार करेंगे।

इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व, प्रचलित लिंग-पूजा के सम्बन्ध में पुराण के पूर्वार्ध में जो वर्णन मिलता है उसके सम्बन्ध में दो एक शब्द यहां लिखना अप्रासंगिक नहीं है

लिङ्गपुराण २४ अध्याय पूर्व भाग में ऋषि पूछते हैं:—

कथं पूज्यो महादेवो लिंगमूर्तिर्महेश्वरः।
वक्तुमर्हसि चस्माकं रोमहर्षण साम्प्रतम् ॥ ११ ॥

सूत उवाचः—

देव्या पृष्टो महादेवः कैलाशे तां नगात्मजाम्।
[illegible]सार्चनाविधि क्रमात् ॥ २ ॥

सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 2887
दयानन्द [illegible] महाविद्यालय, [illegible]

तदा पार्श्वे स्थितो नन्दी शालङ्कायनात्मजः ।
श्रुत्वाखिलं पुरा प्राह ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः ॥ ३ ॥
सनत्कुमाराय शुभं लिंगार्चनविधिं परम् ।
तस्माद् व्यासो महातेजः श्रुतवान्क्रतिसंमितम् ।
स्नानयोगोपचारा च यथा शैल दिनो मुखात् ।
श्रुतवान् तत्प्रवक्ष्यामि स्नानाद्यं चार्चनाविधिम् ॥

ऋषिः—हे रोमहर्षण ! हमें यह बताओ कि लिंग मूर्ति महादेव की पूजा किस प्रकार करनी चाहिए ?

सूत ने कहाः—एक बार महादेव ने गोदी में बैठी शिवा पार्वती को लिंग पूजो की विधि का उपदेश दिया। उससे सनत्कुमार ने सुनी। सनत्कुमार से व्यास ने और व्यास से मैंने सुनी। वही आप लोगों को सुनाता हूं।

ऋषियों के पूछने पर, सूत लिंग की पूजा विधि वर्णन करने का इतिहास सुना कर परम्परा से सुनी हुई विधि का वर्णन करता है।

इस वर्णन में ईश्वर या महादेव की पूजा के साधन बताते हुए पांच महायज्ञों का वर्णन किया है। इन पांच महायज्ञों में लिङ्ग पूजा का कहीं वर्णन नहीं। इसी प्रकार लिंग का जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है :—

वक्ष्यामि शृणु संक्षेपाल्लिंगार्चनविधिं क्रमम् ।
वक्तुंवर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण वै ॥ २७ अ०२

एवं स्नात्वा यथान्यायं पूजा स्थानं प्रविश्य च ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायादेवं त्रियम्बकम् ॥ २७अ२
पञ्चवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं चित्रांबरविभूषितम् ॥
तस्य रूपं समाश्रित्य दहनप्लावनादिभिः ।
शैवीं तनुं समास्थाय पूजयेत्परमेश्वरम् ॥
देहशुद्धिं च कृत्वैव मूलमन्त्रं न्यसेत्क्रमात् ।
सर्वत्र प्रणवेनैव ब्रह्मणि च यथाक्रमम् ॥अ २७। श्लो०५

स्नान के बाद पूजा स्थान में जाय तीन प्रणायाम करके परमात्म महादेव का ध्यान करे। आरती सेचनादि क्रियाओं द्वारा शैवीतनु की भावना से स्वशरीर-शुद्धि कर के मूल मन्त्र का जप करके सर्वत्र व्यापक रूप से परमात्मा का चिन्तन करे।

लिङ्ग स्वरूप वर्णन के स्पष्ट प्रकरणमें लिंगपिण्डी का कहीं वर्णन नहीं किया गया। लिंगस्नान तथा पूजा-मन्त्रों का वार२ वर्णन करते हैं परन्तु लिंग का कहीं वर्णन नहीं करते। २८ वें अध्याय के प्रारम्भ में दृश्यमान लिंगको व्याख्या किए बिना ही शैलादि इस प्रकार कथा छेड़ते हैं:—

आभ्यन्तरं प्रवक्ष्यामि लिंगार्चनमिहाद्य ते ।
आग्नेयं सौरभरितं विम्बं भाव्यं ततो परि ॥
गुणत्रयं च हृदये तथा चात्मत्रयं क्रमात् ।

तस्योपरि महादेवं निष्कलं सकलाकृतिम् ॥
कान्तार्धरूपदेहं च पूजयेद्ध्यानविद्यया ।
ततो बहुविधं प्रोक्तं चिन्त्यं तत्रास्ति चेद्यतः ।
चित्रकस्य ततश्चित्रा अन्यथा नोपपद्यते ॥ ३ ॥
तस्माद्ध्येयं तथा ध्यानं यजमानः प्रयोजनम् ।
स्मरेत्तन्नान्यथा जातु बुध्यते पुरुषस्य ह ॥ ४ ॥

लिङ्ग पूजा आभ्यन्तर तथा वाह्य रूप से दो प्रकार की होती है।

अमृत आग्नेय गुण त्रय रूप पर आत्माका हृदयमें चिंतन करे। इसी हृदय पटल पर निष्कल महादेव की पूजा करे।

उपासक को चाहिये कि उस परमात्मा महादेव की चिन्ता अथवा चिन्तन करे।

आत्मा मन को साधन मानकर, प्रकृति रूप कान्ता के साथ विराजमान शिव व महादेव की पूजा का ध्यान मन्त्र द्वारा करने का आदेश है। केवल इतना ही नहीं, आभ्यन्तर लिंग की पूजा करनेवालों की पूजा करने का आदेश मनुष्य मात्र को दिया है। "आभ्यन्तरार्चकाः पूज्या नमस्कारादि-भिस्तथा" द्वारा ऐसे आभ्यन्तर लिंग के पुजारियों की पूजा का आदेश किया है। यह आभ्यन्तर लिंग के पुजारी आकार तथा शकल में कैसे ही क्यों न हो।

२८ अ. १३० श्लोक ।

आश्चर्य है कि जिस लिंग पूजा—पिण्डिकापूजा का आज पौराणिक भाई माहात्म्य समझते हैं उसका वर्णन लिंगपुराण में २८ अध्यायों तक कहीं नहीं किया। बार २ लिंग का अर्थ तथा लिंगार्चन विधि का प्रकार पूछते हैं परन्तु उत्तर देते हुए कहीं भी लिंग पिण्डी का ज़िकर नहीं करते।

अन्त में श्वेत लिंगमूर्ति तथा महादेव की पूजा करता है। मृत्यु उस पर अधिकार करने आता है तब मृत्यु श्वेत की लिंग-पूजा की मखौल करता है। यह पहला मौका है जहां प्रस्तरमयी लिंग पूजा का जिकर किया हो और साथ ही इस का मखौल भी की हो।

यम कहता है:—

लिङ्गेऽस्मिन्संस्थितः श्वेत तव रुद्रो महेश्वरः।
निश्चेष्टोऽसौ महादेवः कथं पूज्यो महेश्वरः॥

यम कहता है:—

हे श्वेत! इस लिंग में रुद्र महेश्वर अवस्थित है। उसकी पूजा कैसे करनी चाहिए?"

'तू इस निश्चेष्ट पत्थर रूप रुद्र की पूजा क्यों करता है?' श्वेत इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देता। पौराणिक सूत भी कोई जवाब नहीं देता। महादेव के शाप से, मृत्यु को मरवा देता हैं। इस प्रकरण के बाद ३१ वें अध्याय में, पिंडिका रूप वाले लिंग का पितामह इन श्लोकों में वर्णन करते हैं:—

एष चक्री च वज्री च श्रीवत्स कृतलक्षणः,

योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतुरुच्यते ।
द्वापरे चैव कालाग्निः धर्मकेतुः कलौ स्मृतः ।
रुद्रस्य मूर्तयस्त्वेता येभिध्यायन्ति पंडिताः ॥७॥
चतुरस्रं वहिश्चान्नाष्टास्रं पिंडिकाश्रये ।
वृत्तं सुदर्शनं योग्यमेवं लिंगं प्रपूजयेत् ॥
तमोच्यग्नीरजो ब्रह्मा सत्वं विष्णुः प्रकाशकम् ।
मूर्तिरेका स्थिता चास्य मूर्तयः परिकीर्तिताः ॥
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ।
तस्माद्धि देवदेवेशमीशानं प्रभुमव्ययम् ॥
आराधयन्ति विप्रेन्द्राः जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
लिंगं कृत्वा यथा न्यायं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
अंगुष्ठमात्रं सुशुभं सुवृत्तं सर्वसम्मतम् ।
समनामं तथाष्टास्त्रं षोडशास्त्रमथापि वा ॥
सुवृत्तं मंडलं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
वेदिकादिगुणाः तस्य समा वा सर्वसंमता । २६ ।

चक्र धारण करने वाले वज्र का स्वामी श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत कृतयुग में योगी, त्रेता में क्रतु द्वापर में कालाग्नि, कलियुग में धर्मकेतु कहाता है। पण्डित लोग इन निम्नलिखित सद्मूर्तियों द्वारा शिव का ध्यान करते हैं। पिण्ड की बनी

हुई चौकोन अठकोन अथवा गोलाकार सुदर्शन मूर्ति वाला लिंग अग्नि तम रूप है, ब्रह्मा रज रूप है, विष्णु स्वरूप है। असली मूर्ति एक ही है। इसी एक मूर्ति की देव लोग तथा पण्डित लोग पूजा करते हैं। सब लक्षणों से संयुक्त दर्शनीय अंगूठे के समान लिंग की पूजा करे।

भिन्न २ युगों में ईश्वर या महादेव के चक्री आदि रूपों का वर्णन करके पता नहीं लगता यह लिंग गोलमटोल रूप किस युग का चिह्न माना है। कलियुग में धर्म केतु रूप माना है। पिण्डिका वाले लिङ्ग का वर्णन यहां अप्रासङ्गिक मालूम होता है। पाठकों के सामने इन विवरणों से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि लिंग पुराण में उपलभ्यमान पिण्डिका लिंग की पूजा का लिंग पुराण के प्रसंगापतित प्रकरण से कोई सम्बन्ध नहीं है। आलङ्कारिक प्रणाली से प्रकृति पुरुष तथा जीवात्मा का लिंग पुराण में वर्णन किया गया है। इस अवस्था में लिंग पुराण को धर्म ग्रन्थ समझना ठीक नहीं है। मनुष्य जीवन की दृष्टि से भी स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का वर्णन इस में किया गया है। उपरिलिखित उद्धरणों के साथ २ लिंग पुराण का निम्न लिखित श्लोक हमें सदा अपने सामने रखना चाहियेः—

नन्दीः—वक्ष्यामि वो हितं पुण्यं भक्तानां मुनि पुंगवाः
स्त्रीलिंगमखिलं देवी, प्रकृतिर्मम देहजा।

पुल्लिङ्गपुरुषो विप्रा मम देहसमुद्भवः ।
उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न संशयः ॥

नन्दीः—मुनिगण ! मैं आप लोगों के हित की बात कहता हूं। मेरे देह से पैदा होने वाली स्त्री लिंग को धारण करने वाली जितनी प्रकृति सृष्टि है वह सब देवी व शिवा कहलाती है। मेरे देह से उत्पन्न जितने भी पुलिंग (पुरुष योनि) को धारण करने वाले हैं वह सब पुरुष कहलाते हैं। यह संसार सृष्टि इन स्त्रीलिंग तथा पुलिंग के प्रतिनिधि रूप शिवा तथा शिव से ही होती है।

संसार में हम देखते हैं कि सारी सृष्टि स्त्रीलिंग और पुलिङ्ग के भेद से विभक्त की जाती है। नन्दी कहते हैं कि यह सब कुछ परमात्मा का विस्तार है। स्त्री लिंग और पुलिंग में अन्तर्गत हैं। यह दोनों परम लिंग के हिस्से हैं। इनसे सृष्टि पैदा होती हैं। इस प्रकार लिंग पुराण का मुख्य विषय तथा भाव पाठकों के सामने स्पष्ट होगया है। हमें लिंग पुराण का अध्ययन इसी दृष्टि से करना चाहिये। लिंग पिण्डिकादि के वर्णन अप्रासङ्गिक मालूम होते हैं।

लिंग पुराण में वैदिक (आर्यसमाज सम्मत) सिद्धान्तों का समर्थन

ऋषि दयानन्द ने मुक्ति के समय तथा मुक्ति से निश्चित समय के बाद जीवात्मा के कर्मक्षेत्र में आने की जो बात लिखी है उसका समर्थन इन श्लोकों से होता है:—

परान्ते वै विकाराणि विकारे यान्ति विश्वतः । ५० ॥
विकारस्य शिवस्याज्ञा वशेनैव तु संहृतिः ॥
संहृते तु विकारे च, प्रधाने चात्मनि स्थिते । ५१ ॥
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ।
गुणानां चैव वैषम्ये विप्राः सृष्टिरिति स्मृता ॥५२॥
साम्ये लयो गुणानां तु तयो हेतु र्महेश्वरः ।
लीलया देवदेवेन सर्गास्त्वीदृग्विधाः कृताः ॥ ५३ ॥

लिंग पुराण पूर्व भाग अध्याय ४ ॥

(१) "काल या समय की परान्तावस्था का अनुभव वही आत्मा करते हैं जो कि प्राकृतिक विकारों को नष्ट करके, गुणों को प्रकृति में लीन कराकर, आत्मस्थित होकर, प्रकृति को भोग्य बुद्धि से न अपना कर, साधारण या समानता की दृष्टि से अपनाते हैं। इस परान्तकाल की अवधि के बाद परमात्मा की प्रेरणा तथा इच्छा से वह आत्मा फिर विषम

गुणों के साथ सृष्टि में आते हैं। परमात्मा इस प्रकार के अनेक सर्ग सृजता है :—

(२) सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य किस अवस्था में उत्पन्न हुए ? आचार्य दयानन्द लिखते हैं कि युवावस्था में पैदा हुए। लिंग पुराण का श्लोक इस प्रकार है:—

स्रष्टुं च भगवाञ्जक्रे मतिं मतिमतां वर ।
मुख्यं च तैर्यग्योन्यं च दैविकं मानुषं तथा ॥
विभुश्चानुग्रहं तत्र कौमारकमदीनधीः ।
पुरस्तादसृजद्देवः सनंदं सनकं तथा ॥

शिवलिंग ३८ अ० पूर्वभाग। ११ ।

टीकाकार "कौमारकं" शब्द का अर्थ "कुमारसर्गम्" लिखते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में भी यही लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जो मनुष्यसृष्टि थी वह युवावस्था वाले पुरुषों की थी क्योंकि अति बाल और अति वृद्ध उस समय निर्वाह ही नहीं कर सकते थे ।

(३) वर्णव्यवस्थाः—

मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वा तदखिलं विभुः ।
ससर्ज क्षत्रियांस्त्रातुं क्षतात्केमलसंभवः ॥
वर्णाश्रम प्रतिष्ठाञ्च चकार स्वेन तेजसा ।
वृत्तेन वृत्तिना वृत्तं विश्वात्मा निर्ममे स्वयम् ॥
यज्ञप्रवर्तनं चैव त्रेतायामभवत् क्रमात् ।

पशुयज्ञं न सेवन्ते केचित्तत्रापि सुव्रताः ॥

अध्याय ५६ लिं. पू. । ४६—५०—५१ ।

ब्रह्मा ने समाज की मर्यादा को स्थिर रखने के लिये, समाज को आपत्तियों से बचाने के लिये क्षत्रियों को उत्पन्न किया, और साथ ही वर्णाश्रम प्रतिष्ठा भी की। वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रेरक भाव या विभाजक निर्णायक तत्व वृत्ति और वृत्त को स्वीकार किया गया है। वृत्ति का अर्थ है जीविकोपार्जन के लिये स्वीकार किया गया धंधा । वृत्त का मतलब आचार या सदाचार से है। ब्रह्मा ने वृत्त और वृत्ति को आधार मान कर ही वर्णाश्रम व्यवस्था की संस्थापना की। लिंग पुराण के अध्ययन से यह भी पता लगता है कि वर्णव्यवस्था का प्रारम्भ त्रेतायुग से हुआ । इस से पूर्व, कृतयुग में लोग स्वयं नियमित आचार स्वभाव के होने से मर्यादा में रहते थे। उस समय सब मनुष्य मनुष्यत्व के भाव से प्रकृति के उदार दान के कारण आपस में लड़ते नहीं थे। जब आपस में ईर्ष्या द्वेष के भाव पैदा हुए, तभी क्षत्रिय का निर्माण किया गया । वर्णाश्रम व्यवस्था विकास के इस सिद्धान्त को मानने का मतलब यह है कि वर्णव्यवस्था ईश्वर कृत विभाग नहीं है । मनुष्य तथा समाज में वृत्त तथा वृत्ति के अनुसार इस का निर्माण किया जाता है । वेदों के पुरुष सूक्त से भी यही मालूम होता है कि यह वर्ण विभाग आवश्यकता पड़ने पर, समाज की व्यवस्था के

लिये कल्पित किया जाता है। जो पौराणिक भाई या अनुदार विचारक यह मानते हैं कि ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि भेद गौ अश्व आदि की भांति ईश्वर कृत हैं, उनसे हमारा एक प्रश्न है। लिंग पुराण के इस प्रकरण में तथा अन्यत्र जहां सृष्टि रचना का विवरण किया गया है वहां पशु सृष्टि का, गौ अश्व बडवा आदि की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए यह क्यों नहीं लिखा कि फिर ईश्वर ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी बनाए ? पुराणों में तो पशु सृष्टि के वर्णन के बाद मनुष्य सृष्टिका वर्णन मिलता है। इस विचार से यदि पुराणों का अध्ययन करें तो पुराणों के सृष्टि वर्णन वाले सब प्रकरण आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था सिद्धान्त के समर्थक हैं।

(४) आर्य शब्दका प्रयोग—आर्य समाज की सम्मति में मनुष्य समाज को अनार्य और आर्य दो विभागों में बांटना चाहिए। इसी सिद्धान्त के अनुसार आर्यसमाज, भारतीयों तथा विशेषतः हिन्दुओं को इस बात की प्रेरणा करता है कि वह अपने आपको तथा भले मनुष्यों को आर्य कहा करें। इस सम्बन्ध में भी लिंग पुराण आर्यसमाज के मन्तव्यों का समर्थक है।

(१) सारे लिङ्ग पुराण में "हिंदु" शब्द का कहीं भी पाठ नहीं है।

(२) इसके विपरीत निम्न लिखित दो स्थानों पर आए "आर्य" शब्द की तरफ हम पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं।

ब्रह्मा ने दस मानस पुत्रों को पैदा किया । ईश्वर या शिव ने उनको पञ्चाक्षर मन्त्र का मुञ्जपर्वत पर उपदेश दिया। उनका निर्देश करते हुए शिव जी पार्वती को कहते हैं:—

न्यासं षडङ्गं दिग्बन्धं विनियोगमशेषतः ।
प्रोक्तवानहमार्याणां लोकानां हित काम्यया ॥

अध्याय ८५ । श्लो० २४ । लिं० पूर्वभाग.

जेष्ठः सर्वेश्वरः सौम्यो महा विष्णु तनुः स्वयम् ।
आर्यः सेनापतिः साक्षाद्रुद्रनो मख मर्दनः ॥

अ. ८२ । ९३ श्लो० । लिं० पूर्व ॥

प्रथम उद्धरण में ब्रह्मा ने सृष्टि का विस्तार करने के लिए जिन दस पुत्रों को पैदा किया उन दस पुत्रों को "आर्याणां" शब्द से स्मरण किया गया है। पौराणिक कथा विन्यास के अनुसार इन १० पुत्रों से ही मनुष्य सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है। इस दशा में मनुष्यों को आर्य क्यों न कहा जाय ? मुञ्ज पर्वत पर तपस्या करने वाले दस पुत्रों को आर्य कहा गया है। ऐतिहासिकों की दृष्टि में मुञ्ज पर्वत का अभिप्राय क्या है इसके विषय में हम कुछ न कह कर, पौराणिक प्रचलित विचार सरणि के अनुसार इसको भारतवर्ष में ही मानते हैं। इस दशा में भारतवर्ष में रहने वालों को अपने पूर्वजों के अनुसार अपने लिए आर्य शब्द का प्रयोग करने में संकोच न करना चाहिए।

दूसरे उद्धरण में शिव पार्वती के पुत्र शैलाद गणेश को

आर्य कहा गया है। हिन्दू धर्म का कोई सम्प्रदाय होगा जो गणेश की पूजा न करता हो। इस इष्ट देव के पुत्र विघ्नों को हटाने वाले के लिए लिङ्ग पुराण में आर्य शब्द का प्रयोग किया गया है-इस लिए गणेश के पुजारियों को अपने लिए-आर्य शब्द का प्रयोग करने में संकोच नहीं करना चाहिए। जो अपने आपको आर्य कहता है उसके सामने यह भाव होता है कि वह सब मनुष्यों को बराबर समझेगा। (आर्यः यः स्वमिव परमपि पश्यति। कौटिल्य अर्थ शास्त्र.) इस शब्द के कीर्तन से उच्च विचार तथा ज्वलन्त इतिहास, मानसिक चक्षओं के सामने चित्रित हो जाते हैं।

(५) सांख्यवादी निरीश्वरवादी नहीं हैः—ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज सांख्यवादियों को या सांख्य दर्शन को निरीश्वरवादी नहीं मानते।

भवानीशोऽनादिमाँस्त्वं चै सर्वलोकानां त्वं ब्रह्मकर्तादिसर्गः सांख्याः प्रकृतोः परमं त्वां विदित्वा क्षीण ध्यानास्त्वाम मृत्युं विशन्ति ॥ लि. २१ अध्याय ८५ श्लोक

हे शिव ! सांख्य वादी भी आपके प्रकृति से परे तथा सूक्ष्म स्वरूप को जान कर अमृत्यु लोक अर्थात अमत् लोक में प्रवेश करते हैं।

(६) मूर्तिपूजा का स्वार्थ पूर्ण उद्देश्यः—ऋषि दयानन्द ने अनेक वार यह भाव प्रकट किए हैं कि मूर्ति पूजा का प्रचार पुजारी लोग पेट पूजा के लिए करते हैं।

लिङ्ग पुराण ७७ अध्याय पूर्व भाग २६ श्लोक इस विषय में प्रमाण है:-

वृत्यर्थं वा प्रकुर्वीत नरः कर्म शिवालये ।
यः स याति न संदेहः स्वर्गलोकं सबान्धवः ॥

जीविका सिद्ध करने के उद्देश्य से भी मनुष्य शिवालय तथा मन्दिर में लिङ्ग पूजा का कार्य करे। यही प्रकृति धीरे २ मूर्ति पूजा को स्वार्थियों का गढ़ बना देती है । ईश्वर पूजा जैसे पवित्र कार्य को मनुष्य की सांसारिक वासनाओं को पूर्ण करने वाले आडम्बरों से कलुषित नहीं करना चाहिए।

मूर्ख और अविद्वान ही मूर्ति पूजा करते हैं।

लिङ्गं तु द्विविधं प्राहु वाह्यरमाभ्यन्तरं द्विजाः ।
वाह्यं स्थूलं मुनिश्रेष्ठाः सूक्ष्ममाभ्यन्तरं द्विजाः॥१९
कर्मयज्ञ रताः स्थूला स्थूल लिङ्गार्चने रताः ।
असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूल विग्रहः ।२०
आध्यात्मिकं च यल्लिङ्गं प्रत्यक्षं यस्वनो भवेत् ।
असौ मूढ़ो वहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा ॥२१
ज्ञानिनां सूक्ष्ममलं भवेत्प्रत्यक्षमव्ययम् ।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्टाद्यैः प्रकल्पितम् ॥२२
७३ अध्याय । १९—२२ श्लो० ।

वाह्य और आभ्यन्तर भेद से लिङ्ग दो प्रकार का है ।

वाह्य लिङ्ग स्थूल रूप होता है। आभ्यन्तर लिङ्ग सूक्ष्म रूप होता है। कर्म तथा लिङ्ग पूजा में लगे हुए लोग स्थूल लिङ्ग के उपासक हैं। आध्यात्मिक लिङ्ग आभ्यन्तर लिङ्ग है।

ज्ञानी लोग सूक्ष्म आभ्यन्तर लिङ्ग की उपासना करते हैं जिनका मन कहीं किसी बात पर (युक्त) लग नहीं सकता— ऐसे लोग मट्टी लकड़ी आदि के बने हुए लिङ्ग की पूजा करते हैं।

वाल्यात्तु लोष्ठेन शिवं च कृत्वामृदापि वापांसुभि-रादिदेवम्। गृहं च तादृग्विध भस्महां भोः संपूज्य रुद्रत्वमवाप्नुवन्ति ॥ २७ अ० ५ श्लो०

यदि कोई खेल कूद में मट्टी के लिङ्ग की पूजा करे तो वह भी रुद्रत्व की गति को पाता है।

वाह्य आभ्यन्तर अथवा स्थूल भेदसे लिङ्ग दो प्रकार का है। ज्ञानी लोग सूक्ष्म अव्यय की पूजा करते हैं। अयुक्त अज्ञानी लोग रेत और मट्टी के बने हुए शिव की पूजा करते हैं। केवल यही नहीं। यह भी लिखा है कि खेल कूद में, मिट्टी वा रेत के बने शिव की पूजा से भी रुद्रलोक मिल जाता है। आर्य समाज का कथन यह है कि अज्ञान तथा अविद्या का नाश करना चाहिये। इस लिए अविद्या तथा अज्ञान को स्थिर रूप देने वाली मूर्ति पूजा का भी अन्त करना चाहिए। मट्टी के बने लिंगों द्वारा उन्हें मुक्ति दिलाने की अपेक्षा विद्या का प्रचार करके उन्हें अयुक्त तथा अज्ञानी लोगों द्वारा चलाई

गई मूर्ति पूजा को छोड़ देना चाहिए। आर्य समाज की इस सचाई का समर्थन शिक्षित देश कर रहे हैं। जिन २ देशों में विद्या का प्रचार हो रहा है वहां तो मूर्ति पूजा की प्रथा स्वयं ही नष्ट हो रही है। क्योंकि विद्यावाला आदमी स्थूल लिंग की पूजा द्वारा अपने आत्मा को सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

मृतकश्राद्ध और जीवितश्राद्धः—आर्य समाज जीवित श्राद्ध अथवा जीवित पुरुषों की श्रद्धा पूर्वक सेवा करने का समर्थक है। मृतक श्राद्ध का सिद्धान्त अवैदिक है। वर्तमान समय में उपलभ्यमान लिंग पुराण के पूर्व भाग में-मृतक श्राद्ध व जीवच्छ्राद्ध किसी का भी नाम नहीं आता। लिंग पुराण के उत्तर भाग में इस विषय में निम्न लिखित श्लोल उपलब्ध होते हैं:-

देवदेव जगन्नाथ नमस्ते भुवनेश्वर।
जीवच्छ्राद्धं महादेव प्रसादेन विनिर्मितम्॥
लिं० ३। २७। ७ श्लोक।

विशेष एव कथितं अशेषः श्राद्ध चोदितः।
मृते कुर्वन्ति कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम्।
नित्य नैमित्तिकादीनि कुर्यात् वा सत्यजेणु वा।
बांधवेपि मृते तस्य शौचाशौचं न विद्यते॥
लिं० उत्तर। ४५ अ० ८४। ८५ श्लोक।

इस प्रकरण को समाप्त कर ऋषि कहते हैं:—

ऋषय ऊचुः—

जीवच्छ्राद्ध विधिः, प्रोक्तस्त्वया सूत महामते

मूर्खाणामपि मोक्षार्थमस्माकं रोमहर्षण ॥

४६ अ० १ उ० लिं० अ०

इन दोनों उद्धरणों में स्पष्टतया न तो मृतक श्राद्ध का मण्डन है और नाहीं खण्डन । हां यह स्पष्ट है कि दोनों उद्धरणों में जीवच्छाद्ध पर विशेष बल दिया गया है।

(८) लिंग पुराण में वेद का महत्वः—

वेद शब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ।

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु वृत्तयः ॥

७ उ० लिं० ५८ श्लोक

लिंग पुराण में अनेक स्थलों पर वेदोंका माहात्म्य तथा ईश्वरीय ज्ञान होना स्वीकार किया गया है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि वेदों से ही लेकर ऋषियों के नाम रखे गये हैं। इस लिए उन नामों से इतिहास का ढूंढ़ना ठीक नहीं है।

इन संक्षिप्त विवरणों के अतिरिक्त सृष्टि उत्पत्ति का विवरण वही पाया जाता है जोकि उपनिषदों तथा वेदों में है। आलंकारिक अर्थवाद के ढंग से हुए वर्णन को कहानी का रूप दे दिया है। सब वर्णों अ. क. ख. आदि की उत्पत्ति भी परमात्मा से ही मानी गई है।

अनेक स्थलों पर, वैदिक शब्दों की व्याख्या भी आर्य

समाज के मन्तव्य के अनुकूल ही उपलब्ध होती है। गायत्री मन्त्र तथा "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्" की व्याख्या आर्यसमाज के मत के अनुकूल की गई है। इस प्रकरण को समाप्त कर हम लिंग पुराण में प्रचलित पौराणिक सनातन धर्म के विरुद्ध जो बातें लिखी हुई है उनका विवरण पाठकों के सामने रखेंगे।

वर्तमान समय में प्रचलित पौराणिक सनातन धर्म के सिद्धान्त निश्चित नहीं है। सनातन धर्मान्तर्गत सम्प्रदाय अपनी २ अलग रट लगाते हैं। अतः प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार करना मुश्किल है। फिर भी प्रचलित पौराणिक धर्म की कुछेक बातों का वर्णन यहां किया जाता है। प्रचलित पौराणिक मत का अधिकांश में खण्डन लिङ्गपुराण की आलङ्कारिक व्याख्या तथा लिङ्ग पुराण के विचारणीय परस्पर विरोध सम्बन्धी विषय के आलोचन से स्वयं ही हो जाता है।

(क) शङ्करः पुरुषाः सर्वे स्त्रियाः सर्वा महेश्वरी ॥१८॥

पुल्लिङ्ग शब्द वाच्या ये ते च रुद्रा प्रकीर्तिताः।
स्त्रीलिङ्ग शब्द वाच्या या सर्वा गौर्या विभूतयः॥

लिङ्ग पुराण उत्तरार्ध ११। श्लो० १८। ११

जितने पुरुष हैं वह सब ही शङ्कर हैं। जितनी स्त्रियां हैं वह सब शिवा या पार्वती कहलाती हैं। स्त्रीलिंग शब्द से कहे जानी वाली सब सृष्टि "गौरी" पार्वती की विभूति है।

लिङ्ग पु. अ. ६३ में १० श्लोकसे लेकर २० श्लोक तक शैलज रत्नज दधिमय भोरूमय दारुज आदि अनेक प्रकारके लिङ्गों की पूजा का विधान है, परन्तु वर्तमान समयमें सिवाय मृण्मय या प्रस्तरमय लिङ्ग की पूजाके और किसी प्रकारके लिङ्गकी पूजा का प्रचार नहीं दिखाई देता। ऐसा मालूम होता है कि देश की गरीबी या लोगों की धन लोलुपता या अर्कमण्यता से डरने की प्रवृत्ति ने भी शिवलिङ्ग को इस दशा तक पहुंचाया है। इस प्रकार के परिवर्तनशील पौराणिक मत से क्या लाभ ! इष्ट देव को भी भक्तों की कमजोरी के कारण हीन अवस्था को प्राप्त होना पड़ा।

(ख) वर्तमान समय में, भस्म शब्द का अर्थ केवल राख या धूनी रमाना समझा जाता है परन्तु लिङ्ग पुराण में भस्म का अर्थ वीर्य किया है।

अग्निकार्यं च यः करिष्यति त्रिया पुषम्
भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्व किल्बिषैः ॥
भक्षणात्सर्वपापानामत्येति परिकीर्तितम् ।
तस्माद्भस्म महाभागा मद्वीर्यमिति चोच्यते ।
स्ववीर्यं वपुषा चैव धारयामीतिवै स्थितिः ।

३४ अ० लिं० पु० पूर्वभाग । ६–८ श्लोक

*जो आदमी मेरे वीर्य रूप भस्म से जीवन निर्वाह करता है वह सब पापों से निवृत हो जाता है। क्योंकि]

वीर्य सब पापों को दग्ध करता है जला देता है इसलिये इसे भस्म कहते हैं। मैं अपने शरीर को वीर्य द्वारा ही धारण करता हूं।

(ग) दैत्यों के त्रिपुर वर्णन किया गया है।

वेदाध्ययन शालाभिः विविधाभिः समन्ततः।
अधृष्टं मनसाप्य चैर्भस्मस्यै व च मायया।

७१अ०।३१ श्लो०

दैत्योंके त्रिपुर में भी वेद पाठशालाएं थी। यह दैत्य कम से कम देवातिरिक्त आर्यातिरिक्त पुरुष थे—जब इन को वेद पढ़ने का अधिकार था तो आज कल आर्य जाति के अंगभूत शूद्रों या स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार न देना अयुक्त है। इस श्लोक का भाव यह है कि वेद की पाठशालाओं के कारण त्रिपुर पर कोई आक्रमण नहीं कर सका। इसी प्रकार आज जिन्हें सनातनी भाई उच्च अधिकार नहीं देते उन्हें भी चाहिए कि अपने २ मुहल्लों में वेद पाठशालायें खुलवाएं। फिर किसी की क्या शक्ति कि उन पर उनके धार्मिक अधिकारों पर हाथ उठा सके।

(घ) आजकल पौराणिक लोग शंकर और शिवा या पार्वती शब्द का प्रयोग केवल मात्र पत्थर के शंकर या उनके पास बैठी पार्वती से करते हैं। परन्तु इस प्रकरण के प्रथम श्लोकों में साफ़ स्पष्ट लिखा है कि पुरुष मात्र शिव हैं और स्त्रीमात्र शिवा हैं। इस दृष्टि से मनुष्य मात्र या प्राणि मात्र

की पूजा करनी सनातन धर्म है। यदि इस दृष्टि से पौराणिक भाई व्यवहार करें तो संसार में कोई भी मनुष्य या प्राणी ऐसा न रहे जो उनके धर्म में न आवे।

लिंग पुराण का संस्कृत साहित्यपर प्रभाव

संस्कृत साहित्य पर किसी एक पुराणकी दन्त कथाओं का प्रभाव नहीं है। सब पुराणों का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से संस्कृत साहित्य पर प्रभाव दिखाई देता है। इसलिए किसी एक पुराण की दन्त कथाओं तथा काल्पनिक अर्थवादों का निश्चित तथा स्पष्ट रूप में संस्कृत साहित्य के काव्य ग्रन्थों पर क्या प्रभाव पड़ा है—इसका विवेचन करना असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर है। एक ही दन्तकथा अनेक रूपों में भिन्न २ पुराणों में लिखी गई है। इसलिए कौन सी कथा मूल रूप में किस पुराण-विशेष से सम्बद्ध है. यह निश्चित करना कठिन है। लिंग पुराण के सम्बन्ध में यह दिक्कत और भी अधिक जटिल हो जाती है। क्योंकि शिव पुराण तथा लिंग पुराण का विषय तथा उद्देश्य एक ही है।

पुराणों का संस्कृत साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा है उस के आलोचन की आवश्यकता इसलिए है कि साहित्य किसी जाति व राष्ट्र का लिखित चित्र होता है। शिव तथा लिंग की पूजा करने वाले राजाओं या समाजों के इतिहास के निरीक्षण में जो साहित्य पैदा हुआ है उस पर शिव पुराण तथा लिंग

पुराण की धार्मिक कल्पनाओं का प्रतिविम्ब पड़ना अनिवार्य है। इस तरफ ध्यान देने की आवश्यकता इस लिए भी है कि भारतीय इतिहास में शिव और लिंग की पूजा करने वाले व्यक्तियों ने अपने समय में बड़े २ वीरता पूर्ण कार्य किए हैं।

चित्तौड़ के महाराणा एकलिंग के पुजारी थे। हर हर का नारा लगा कर इन्हों ने कई बार, विदेशियों तथा अत्याचारियों के छक्के छुड़ाए।

आज भी उदयपुर से थोड़ी दूरी पर अवस्थित एकलिंग जी के विशाल मंदिर को देख कर, उसके चारों तरफ़ की पर्वत माला के उच्च शिखरों पर कहीं २ मंदिरों के चिन्ह देखकर, यह भावना हृदय में पैदा हुए बिना नहीं रहती कि यह मंदिर केवल धर्म मंदिर ही नहीं थे-यह युद्ध मंदिर भी थे।

पत्थर के गोल २ लिङ्ग केवल पूजा के साधन नहीं थे अपितु मर्कटी यन्त्र द्वारा दुश्मनों पर फेंके जाने वाले गोले थे। इसी प्रकार, आज भारतवर्ष में इसी इक लिङ्ग पशुपति का नाम लेकर, राज्य करने वाले नैपाली लोग स्वतन्त्र हैं। भारतीय इतिहास के वीर नायकों से कवियों ने किसी न किसी प्रकार से शिव की पूजा करादी है। महाराष्ट्र के भूषण शिवाजी महाराज ने भवानी तलवार की मूर्ति में भवानी की धारणा करके, अपने समय में भारतीय साहित्य में शिव तथा लिङ्ग पुराण की कथाओं का काफ़ी प्रचार किया था। केवल यही नहीं; भारतवर्ष में अंग्रेज़ों के आने पर, विखरी

सेनाओं के सिपाहियों ने ठगों का बाना पहन कर, हिन्दू
ने मिल कर, भवानी की पूजा करने में संकोच
। इन घटनाओं के द्वारा शिवपुराण तथा लिङ्ग
तकथाओं का आम जनता पर काफ़ी प्रभाव
स के कुमार सम्भव में लिङ्ग पुराण की कथा
ाई देती है।
ाण के पञ्चम अध्याय तथा अन्य स्थानों पर
किए गए हैं उन में धृति श्रद्धा आदि गुणों
। रूप दिया गया है। प्रबोध चन्दोदय जैसे
नाटकों में पुराणों की इस कल्पना के आधार पर, नाटकों द्वारा इन गुणों का प्रचार करने का यत्न किया गया है। ऐसा मालूम होता है कि इन कथाओं के रचयिताओं ने कथा तथा काव्य के ढंग से लोगों को ज्ञान उपदेश देने की परिपाटी चलानी चाही थी-परन्तु पीछे से लोग अलङ्कार के तत्व को भूल कर उन्हें असली देवी देवता समझने लगे। कुमार सम्भव की कथा तथा वृत्तान्त में स्थान २ पर प्रकृति वर्णन तथा मनुष्य स्वभाव का वर्णन आलङ्कारिक ढंग से किया हुआ दिखाई देता है परन्तु शब्दों को रूढ़ि मानने वाले, स्थूल बुद्धि वाले लोगों ने अर्थ का अनर्थ कर दिया है।

मध्यकाल में अशिक्षित अदूरदर्शी लोगों ने पुराणों की आलङ्कारिक तथा यौगिक व्याख्या को भुला कर, संस्कृत साहित्य को जीवन हीन बना कर, भारतीय राष्ट्र को नुकसान

पहुंचाया था। अब आवश्यकता इस बात की है कि इन आलङ्कारिक भावों का फिर से प्रचार किया जाय। तभी सच्चे अर्थों में मूर्ति पूजा का खण्डन हो सकेगा। रूढ़ि पूजा और मूर्ति पूजा में कोई भेद नहीं हैं।

लिङ्ग पुराण तथा अन्य पुराणों ने, संस्कृत साहित्य में तथा आम जनता में बहु देवता वाद का प्रचार किया। यह बुराई तभी दूर हो सकती है जब कि हम जनता के सामने इस बात को स्पष्ट करदें कि पुराण तथा लिङ्गपुराण यह धर्म ग्रन्थ नहीं हैं किन्तु यह लौकिक साहित्य के सामान्य ग्रन्थ हैं। यदि इस प्रकार इनका अध्ययन किया जायगा तो भारतवर्ष के वर्तमान साहित्य पर इनका उत्तम प्रभाव पड़ेगा। इस उत्तम प्रभाव को पैदा करने के लिए, दन्त कथाओं को आलङ्कारिक व्याख्या तथा पुराणों को धर्मग्रन्थ न मान कर, उन्हें लौकिक साहित्य का अंग मानना ही एक मात्र उपाय है। आशा है भारतीय साहित्य का निर्माण करने वाले इसी दृष्टि से साहित्य का निर्माण करेंगे।

लिंग पुराण की रचना में दोष

लिङ्ग पुराण की समालोचना को पूर्ण करने के लिये आवश्यक है कि लिङ्ग पुराणके दोषों की भी पाठकों के सामने उपस्थित किया जाय। लिङ्ग पुराण में कई प्रकार के दोष विद्यमान हैं।

लिङ्ग पुराण के अध्ययन से मालूम होता हैं कि ग्रन्थ रचना के नियमों की दृष्टि से इस में कई दोष विद्यमान हैं। हम क्रमशः इन दोषों पर विचार करेंगे।

(१) ग्रन्थ रचना की दृष्टि से अप्रासङ्गिक बातों का वर्णन। (२) परस्पर विरोध तथा अनावश्यक पुनरावृत्ति (३) आचार की दृष्टि से अर्थवादों तथा कथाओं के दोष।

—०—

(१) ग्रन्थ रचना की दृष्टि से अप्रासंगिक बातों का वर्णन।

लिङ्ग पुराण के पूर्वभाग और उत्तर भाग में परस्पर सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। लिङ्ग पुराण के पूर्व भागके अन्तिम अध्याय के अन्तिम श्लोक को छोड़ कर शेष सारा अध्याय शिव तथा रुद्र के माहात्म्य का समर्थक है। अन्तिम श्लोक में पता नहीं, भक्तों को विष्णुलोक में क्यों पहुंचाया गयाहै। लिंग पुराण का उद्देश्य भक्तों को रुद्रलोक में पहुंचाना है। ऐसा मालूम होता है कि अन्तिम श्लोक किसी वैष्णव ने अपनी टांग ऊंची रखनेके लिए लिख मारा है। लिङ्गपुराण के पूर्व-भाग में शिव, रुद्रलोक, पार्वती, सृष्टिवर्णन, लिङ्गपूजा आदि सब विषयों का विवरण किया गया है। इस पूर्व भाग के पढ़ने के बाद ऐसा मालूम होता है कि अब लिङ्ग पुराण अपने प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से समाप्त हो चुका है। सब प्रकार के माहात्म्यमन्त्रपाठों का फल निर्देश किया जा चुका है।

इस पूर्वभाग में केवल मात्र, लिङ्गपुराण की कथा प्रारम्भ करने वाले, सूत, नैमिषारण्य के ऋषियों तथा नारद को अन्तिम नमस्कार नहीं किया गया। बीच में ही लिङ्गपुराण के अन्तिम श्लोक में भक्त को विष्णु लोक में भेज कर उत्तर भाग का प्रारम्भ विष्णु कृष्ण के माहात्म्य से किया गया है। उत्तर भाग के प्रथम भाग में ज्यादा जोर वैष्णव भक्ति तथा विष्णु अवतार के माहात्म्य पर दिया गया है। विष्णु पुराण में यह वर्णन संगत मालूम हो सकता हैं, परन्तु यहां लिङ्ग पुराण में जहां बीच में अनेक वार, ब्रह्मा विष्णु की लड़ाई कराकर, उन्हें रूद्र के सामने नीचा दिखाया है, इस प्रकार विष्णु की स्तुति अप्रासङ्गिक ही नहीं किन्तु लेखक के दिमाग की विचित्र दशा की परिचायक हैं। हमारा अनुमान है कि यदि लिङ्ग पुराण के शिवजी को, या उन के भक्त को यह विष्णु माहात्म्य का स्तोत्र सुनाया जाय तो वह अवश्य ही किसी न किसी ढंग से नई कथाएं घड़कर, विष्णु महाराज को नीचा दिखाने का यत्न करेंगे।

(२) परस्पर विरोध आदि

लिङ्गपुराण में जितनी कथाएं आई हैं, उनका प्रारम्भ सूत और श्रोताऋषियों ने, शिव माहात्म्य का प्रदर्शन करने के लिए किया हैं। अतः उनमें परस्पर विरोध दिखाई नहीं देता। परन्तु फिर भी जहां महादेव से भव, विष्णु और ब्रह्माकी उत्पत्ति का वर्णन है वहां पढ़ने वाले के हृदय में यह प्रश्न पैदा होता है कि विष्णु और ब्रह्मा की भाँति भव की भी अलग

स्थिति होगी। परन्तु जब भव का स्वरूप वर्णन पढ़ते हैं तो महादेव और भव में किसी प्रकार का भेद भाव दिखाई नहीं देता।

ग्रन्थ रचना की दृष्टि से एक ही ग्रन्थ में बार २ एक ही बात का नाम मात्र के परिवर्तन के साथ पुनः पाठ करना भी ठीक नहीं है। लिङ्ग पुराण में यह दोष अनेक स्थलों पर पाया जाता है। सृष्टि वर्णन, शिव माहात्म्य प्रदर्शन, कम से कम ६ बार बिना किसी विशेष भेद के दुहराया गया है। इसी प्रकार शिव स्तोत्रों तथा शिव माहात्म्यों का बार २ दुहराना भी ग्रन्थ रचना शास्त्र की दृष्टि से अनुचित है। इस दोषके कारण पाठक तथा लेखकका समय खराब होता है। इस प्रकार के पुनरावृत्तिके दोष अनेक स्थलों पर पाठकों को बिना किसी विशेष यत्न के दिखाई देंगे। तीसरा स्थल भी पाठकों के सामने रख देना अप्रासङ्गिक न होगा। शिव के सामने विष्णु और ब्रह्मा की हीन स्थिति का दिग्दर्शन एक बार कराना पर्याप्त था, परन्तु लिङ्ग पुराण के संग्रहकर्ता या लेखक इससे सन्तुष्ट न होकर, जहां कहीं अवसर देखते हैं, नई कथा तथा नया सिलसिला छेड़ कर शिव के सामने ब्रह्मा और विष्णु की स्थिति को कम करने में नहीं चूकते। त्रिदेवतावाद की दृष्टिसे यह भी आवश्यक था कि लेखक महोदय कहीं तीनों शक्तियों का समन्वय दिखाते। इसके लिये थोड़ी बहुत कोशिश की गई है, परन्तु आवश्यकता इस बात की थी कि इस समन्वयवाद के लिए विशेष जगह दी जाती, परन्तु ऐसा नहीं किया गया।

लिङ्ग पुराण के कुछ स्थलों पर, वेद संहिताओं के मन्त्रों का पाठ किया गया है। परन्तु इन मन्त्रों की प्रतीक आदि नहीं लिखी गई। यह नहीं बताया गया कि कौन सा मन्त्र किस वेद से लिया गया है। इसी प्रकार पञ्चाक्षर मंत्रोपदेश का माहात्म्य तो गा दिया गया है, परन्तु उसका स्वरूप निर्देश स्पष्ट रूप में नहीं किया गया। ग्रन्थरचना की दृष्टि से लिङ्ग पुराण में यह भी बड़ी भारी त्रुटि है कि इस में किसी एक ग्रन्थ लेखक का व्यक्तित्व नहीं झलकता। निःसन्देह कथा श्रावक सूत है, परन्तु अनेक स्थलों पर ऐसा मालूम होता है कि लेखक बदल रहा है, परन्तु इसका वर्णन कहीं नहीं किया गया। लिङ्ग पुराण में कोई ऐसा सूत्र या तार नहीं है जिस में किसी एक लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित किया गया हो।

(३) आचार शास्त्र की दृष्टि से।

आचार शास्त्र की दृष्टि से अर्थवादों, कथाओं तथा माहात्म्य वर्णनों की समालोचना लिङ्ग पुराण जैसे किसी भी ग्रन्थ की श्रेष्ठता का निर्णय करने के लिये, आवश्यक है कि उस ग्रन्थ में वर्णित स्त्री पुरुषों के परस्पर सम्बन्ध का निरीक्षण किया जाय। इस दृष्टि से लिङ्ग पुराण घटिया स्थिति का ग्रन्थ सिद्ध होता है। लिङ्ग पुराण में स्त्रियों का जो वर्णन किया गया है उससे पता लगता है कि लेखक स्त्री जाति को भोग का साधन और अस्वतंत्र समझता था। इसके लिए निम्न लिखित उद्धरण हम पाठकों के सामने उद्धृत करते हैं।

गृहस्थ तथा ब्रह्मचारी के लिए ब्रह्मचर्य का उपदेश

करने के बाद वैखानसों के विषय में लिखते हैं :—

स्त्रियः सदा परित्याज्याः संगं नैव च कारयेत् ।
कणपेषु च यथा चित्तं तथा कुर्याद्विचक्षणः ॥

स्त्रियों का सदा परित्याग करना चाहिए। इनका कभी संग न करे। बुद्धिमान् इन्हें लाश की भांति माने।

विण्मूत्रोत्सर्गकालेषु बहिर्भूमौ यथा मतिः ।
तथा कार्या रतौ चापि स्वदारे चान्यतः कुतः ।
अंगारसदृशी नारी घृतकुम्भसमः पुमान् ।
तस्मान्नारीषु संसर्गं दूरतः परिवर्जयेत् ।
लिं० पु० अ० ८। श्लोक २१। २२। २३।

मनुष्य जिस प्रकार गृहशौच तथा मलमूत्रोत्सर्ग करते समय बाहर भूमि में सङ्ग करता है उसी प्रकार केवल मात्र रतिकाल में अपनी स्त्री का सङ्ग करे। अन्य स्त्री का सङ्ग न करे।

स्त्री जलते हुए कोयलों के समान होती है। पुरुष घी से भरे हुए घट के समान होता है। इस लिये स्त्रियों का दूर से ही सङ्ग छोड़ देना चाहिए।

इन श्लोकों में स्त्री जाति को अंगार के साथ उपमा दी है। उन्हें भोग का विषय माना है। काम या भोगवाद को बढ़ाने वाली केवल स्त्रियां ही नहीं होतीं, पुरुष भी इसमें विशेष कारण होते हैं। आदर्शब्रह्मचर्य्य रखने के लिये, जिस प्रकार से पुरुषों को स्त्री संसर्ग से बचने का आदेश दिया है उसी

प्रकार से स्त्रियों की दृष्टि से भी उपदेश होना चाहिये। परन्तु इसकी आवश्यकता का अनुभव ही नहीं किया गया। किया भी क्यों जाय। जब कि लिंग पुराण के लेखक स्त्रियों को सर्वथा अस्वतन्त्र समझते हैं। स्त्रियां भोग्य वस्तु हैं यह विचार लिंग पुराण के इस वाक्य से भी सिद्ध होता है।

स्त्रियः सर्वा न हन्तव्या पापकर्मरता अपि ॥
न यज्ञार्थं स्त्रियो ग्राह्याः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा।
सर्ववर्णेषु विप्रेन्द्राः पापकर्मरता अपि ॥

लिं० पु० अ० ७८। श्लो० १८। १९।

पाप कर्म में लगी हुई स्त्रियों की भी हत्या नहीं करनी चाहिए। यज्ञ कार्य में किसी समय भी किसी दशा में स्त्री का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

कामतोपि कृतंपापं भ्रूणहत्यादिकं च यत्।
तत्सर्वं शूलदानेन भिंद्यान्नारी न संशयः।
सायुज्यं चैवमाप्नोति भवान्या द्विजसत्तमाः।
कुर्याद्यद्वा नरः सोपि रुद्रसायुज्यमाप्नुयात्।
पौर्णमास्याममावास्यां वर्षमेकमतन्द्रिता।
उपवासरता नारी नरोपि द्विजसत्तमाः।
नियोगादेव तत्कार्यं भर्तृणां द्विजसत्तमाः।
जपः दानं तपः सर्वमस्वतन्त्राः यतः स्त्रियः

लिं० पु० अ० ८४। १२। १६।

कामवश भी जो भ्रूणहत्यादि पाप हो जाए, तो स्त्री शूलदान से उसे नाश करदे। हे द्विज श्रेष्ठो! इस प्रकार वह पार्वती का सायुज्य प्राप्त करती है। पुरुष भी यदि ऐसा करे, तो वह भी रुद्रसायुज्य को प्राप्त करे। पुरुष तथा नारी एक वर्ष तक आलस्य रहित होकर पौर्णमासी अथवा अमावास्य में उपवास करें। स्त्रियों को जप, दान, तप, सब पतियों की आज्ञा से करना चाहिए, क्योंकि स्त्रियां स्वतन्त्र नहीं हैं। स्त्रियां परतन्त्र होती हैं। उन्हें पतियों की आज्ञा से ही कार्य करना चाहिए।

षोडषस्त्रीसहस्राणि शतमेकं तथा विधम्
कृष्णस्य तासु सर्वासु प्रिया ज्येष्ठा च रुक्मिणी।

लिं० पु० ६६ अ० ६६ श्लोक

कृष्ण की १६१०० स्त्रियां थी। परन्तु उन सब में उन्हें केवल रुक्मिणी ही सबसे अधिक प्रिय थी।

इन सब श्लोकों का भाव यह है कि "स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि" के अनुसार, पापिनी से पापिनी स्त्री को भी नहीं मारना चाहिये, अथवा भोग वासना को तृप्त करने के लिये उसको रत्न की तरह संभाल कर रखना चाहिये। इसी भोग-कामना को पूर्ण करने के लिये यह भी लिखा है कि भ्रूणहत्यादि भोगकामना के पापमय परिणाम भी शूल दान से मिट जाते हैं। धर्म यज्ञ तप आदिके करने के विषय में भी वह पतियों के अधीन हैं, अस्वतन्त्र हैं। भोगी पुरुष भला

कब चाहेगा कि उसकी स्त्री यज्ञ योगादि करके अपने स्वरूप को समझने लगे और उसकी भोग वासनाओं में बाधक सिद्ध हो। महाभारत के योगी कृष्ण के नाम पर, १६ हजार स्त्रियां लिख कर, अपने भोगदारमय सिद्धान्तों का समर्थन किया गया है। परन्तु लेखक महोदय, रामायण की उस घटना को भूल गये हैं जहां रामने विश्वामित्र की आज्ञा से ताटका को मारा था। यदि स्त्रियों को यह मालूम हो कि उन्हें भी पाप या अधर्म का बुरा फल भोगना पड़ेगा तो वह अपने जीवन की रक्षा के लिये स्वयं पाप मार्ग से बचें। परन्तु जब उन्हें कहा जाता है कि पाप करने पर भी उन्हें कोई खतरा नहीं तो वह उससे क्यों बचें। और क्यों धार्मिक कामों में प्रवृत हों। यदि उन्हें मालूम हो कि उनका अपना भी धर्म कोई पृथक पदार्थ है तो वह सुदर्शन या उस जैसे अन्य पापी पतियों की काम वासनाओं या भोग वासनाओं का प्रतिवाद करें। इसी लिङ्ग पुराण में सुदर्शन की कथा का वर्णन है। इससे पता लगता है कि किस प्रकार अस्वतन्त्र स्त्रियां पतियों की मूर्खता तथा अज्ञानता के कारण दूसरों की भोगतृप्ति का साधन बनती हैं। इस कथा का प्रारम्भ इन श्लोकों से किया गया है:—

गृहस्थैश्च न निंद्यास्तु सदा ह्यतिथयो द्विजाः।
विरूपाश्च सुरूपाश्च मलिनाश्चाप्यपंडिताः॥
सुदर्शनेन मुनिना कालमृत्युरपि स्वयम्।

पुरा भूमौ द्विजाग्र्येण जितो ह्यतिथिपूजया ॥

लिं० पु० २९ अ० । ३४ श्लोक

गृहस्थियों को अतिथियों की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये। अतिथि कैसे ही क्यों न हो । सुरूप हों कुरूप हों मलिन हों या मूर्ख। द्विज श्रेष्ठ सुदर्शन मुनि ने अतिथिपूजा से स्वयं कालमृत्यु को जीता था।

सुदर्शन ने काल मृत्यु को जीतने की इच्छा से अपनी धर्मपत्नी को कहा कि तुमने घर आए हरेक अतिथि का सब प्रकार से बिना किसी संकोच के आतिथ्य करना । अतिथि साक्षात् शिवरूप है। सुदर्शन की स्त्री ने न चाहते हुए भी विवश और संतप्त होकर, पति की आज्ञा को मानना स्वीकार किया। दोंनों की परीक्षा लेने के लिए धर्म द्विजोत्तम का रूप धारण करके अतिथि बनकर, उनके घर गया । सुदर्शन बाहर गया हुआ था। स्त्री ने अन्नादि अर्घ्य से उसका स्वागत तथा आतिथ्य किया। इसके बाद वह अतिथि पूछता है कि तुम्हारे पति कहां गए हैं, अभी वह कोई उत्तर नहीं देती कि धर्म उस स्त्री को कहता है:--शेष कथा श्लोकोंमें इस प्रकार से लिखी है:-

अन्नाद्यैरलमद्यार्ये स्वं दातुमिह चार्हसि ।

सा च लज्जावृता नारी स्मरन्ती कथितं पुरा ॥५५॥

भर्त्रा न्यमीलयन्नेत्रे चचाल च पतिव्रता ॥

किं चैत्याह पुनस्तं वै धर्मं चक्रे च सा मतिम् ॥५६॥

निवेदितुं किलात्मानं तस्मै पत्युरिहाज्ञया ।
एतस्मिन्नंतरे भर्ता तस्या नार्यः सुदर्शनः ॥५७॥
गृहद्वारं गतो धीमाँस्तामुवाच महामुनिः ।
एह्येहि क्व गता भद्रे, तमुवाचातिथिः स्वयम् ॥५८॥
भार्यया त्वनया सार्धं मैथुनस्थोहमद्य वै
सुदर्शन महाभाग किं कर्तव्यमिहोच्यताम् ॥५९॥
सुरतान्तस्तु विप्रेन्द्र संतुष्टोहं द्विजोत्तम ।
सुदर्शनस्तं प्राह सुप्रहृष्टो द्विजोत्तम ॥६०॥
भुंक्ष्व चैनां यथाकामं गमिष्येऽहं द्विजोत्तम ।

२९ । अ० ५७—६२

इन श्लोकों का शब्दार्थ लिखने का सामर्थ्य हममें नहीं है। श्लोकों का भाव यह है कि वह स्त्री अपने आप को अतिथि की भोग वासनाओं की तृप्ति के लिए समर्पण करती है उसका पति भी "भुंक्ष्व चैनां यथाकामम्" "तुम यथेच्छ इससे भोग करो,, कह कर, जाने को तय्यार होजाता है। यह कथा केवल काल्पनिक या आलङ्कारिक होसकती है परन्तु इस प्रकार की कथाओं का साधारण बुद्धि वाले लोगों पर जो बुरा असर होता है वह किसी से छिपा नहीं है। आज भी इसी प्रकार के विचारों के कारण कितनी स्त्रियां अतिथि रूप में, घरों में आने वाले नामधारी सन्तों के हाथ में अपने

आपको भेंट कर देती हैं। लिङ्ग पुराण के लेखक ने देवता के अतिथि रूप के महत्व को सिद्ध करने के लिए कहानी लिखी परन्तु यह नहीं सोचा कि इस कहानी का कमज़ोर लोगों पर क्या बुरा प्रभाव पड़ेगा ? इसी प्रकार पापी से पापी आदमी को भी लिङ्ग के छूने तथा देखने से पाप मुक्त होने की प्रेरणा करके, लिङ्ग पुराण के लेखक ने अधर्म के लिए रास्ता खोल दिया है। आचार तथा सदाचार की दृष्टि से इस प्रकार की त्रुटियां लिङ्ग पुराण में अनेक स्थानों में दिखाई देती हैं। नारद और पर्वत की कहानी में किस प्रकार, विष्णु छलिया बनकर, स्वयंवर में अम्बरीष की कन्या श्रीमती का पाणिग्रहण करता है। यह कथा भी इस दृष्टि से अच्छी नहीं है। इस प्रकार संक्षेप से हमने इस विषय पर विचार किया है । इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व, यह कह देना अप्रासङ्गिक नहीं कि आम जनता तथा कुछ पढ़े लिखे विद्वानों में, लिङ्ग पुराण तथा लिङ्ग शब्द के सम्बन्ध में जो गन्दे भाव पाए जाते हैं, उसका लिङ्ग पुराण में कहीं भी जिकर नहीं है। लिङ्गपुराण में उपरिलिखित प्रकार से भोग वाद का पर्णन अवश्य है, परन्तु वाम मार्गियों की भांति पुरुष के लिङ्ग तथा स्त्री की योनि की पूजा आदि का कहीं वर्णन नहीं है। लिङ्ग-पुराण के सम्बन्ध में फैले हुए, इस भ्रम को भी दूर करना चाहिए।

इसके बाद धर्म स्वरूप दिखाता है वर देता है शंकर की भक्ति का प्रसाद देता है और कहता है कि मैंने इससे भोग नहीं किया केवल परीक्षा के लिये आया था।

विचारणीय तथा मननीय स्थल

अन्य पुराणों की भांति लिङ्ग पुराण में भी कलियुग का वर्णन मनोरञ्जक ढंग से किया गयाहै। इस वर्णन के पढ़ने से मालूम होता है कि कोई साक्षाद्द्रष्टा कलियुग की अवस्था का वर्णन कर रहा है। पुराणों में कलियुग के जो वर्णन हैं उनसे लेखक की दूरदर्शिता का पता लगता है। धनवाद, भोगवाद तथा साम्प्रदायिकतावाद और अज्ञानवाद की वृद्धि के परिणामों का वर्णन किया गया है। आज भी युरोप में कई ऐसे ऐतिहासिक या अनुमानप्रवीण महानुभाव विद्यमान हैं जो समाज की वर्तमान अवस्था को देखकर दूर के भविष्यका सही चित्र खींच देते हैं। १९१४ ई. में यूरोप में जो बड़ा भारी युद्ध हुआ, उस का वर्णन यूरोप के कई विद्वानों की पुस्तकों में कई साल पूर्व लिखा जा चुका था। लिङ्ग पुराण के इन वर्णनों के पढ़ने से पता लगता है कि लेखक की दृष्टि दूर तक जाने वाली तथा समाज की वर्तमान अवस्था के परिणामों को ढूंढने में चतुर थी। इन कलि-वृत्तान्तों से पता लगता है कि यदि समाज की अवस्था सुधारनी है तो इन बुराइयों को दूर करना चाहिये। इन बुराइयों को दूर करने के लिये, लिङ्ग पुराण में अनेक स्थलों पर सदाचार सम्बन्धी विषयों का उत्तम ढंग से वर्णन किया गयो है। पाठकों के मनोविनोद तथा मनोरञ्जन के लिये हम उनमें से कुछ श्लोकों को यहां उद्धृत करते हैं।

सदाचारी जपन्नित्यं ध्यायन्भद्रं समश्नुते ।

सदाचारं प्रवक्ष्यामि सम्यग्धर्मस्य साधनम् ।

सदाचारी पुरुष ही जप करता हुआ, ध्यान करता हुआ, मङ्गल को प्राप्त करता है। सदाचार ही धर्म का साधन है ॥१॥

यस्मादाचारहीनस्य साधनं निष्फलं भवेत् ।

आचारः परमो धर्मः आचारःपरमं तप ॥

आचारहीन पुरुष के सब काम तथा साधन निष्फल होते हैं। आचार ही परम तप तथा परम धर्म है ॥ २ ॥

आचारः परमा विद्या आचारः परमागतिः ।

सदाचारवतां पुंसां सर्वत्राप्यभयं भवेत् ॥ ३

आचार ही विद्याओं तथा परम प्रतिष्ठा का मूल कारण है। सदाचारी पुरुष सब जगह निर्भय हो कर रहता है। ३

तद्वदाचारहीनानां सर्वत्रैव भयं भवेत् ।

सदाचारेण देवत्वमृषित्वं च वरानने ॥ ४

उपयान्ति कुयोनित्वं तद्वादाचारलंघनात् ।

आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।

तस्मात्संसिद्धिमन्विच्छन्सम्यगाचारवान् भवेत् ॥

यस्य यद्धितं कर्म तत्कुर्वन्सत्प्रियः सदा ।

इसके विपरीत आचारभ्रष्ट मनुष्य कदम २ पर भय-भीत होता है। सदाचार द्वारा ही देवत्व और ऋषित्व का

पद मिलता है आचार हीन पुरुष निकम्मी योनियों में जन्म लेता है। इस लिये सफलता के अभिलाषी को सदा सदाचारी बनना चाहिए। जिसका जो काम या धर्म है उसे उसी का पालन करना चाहिये।

संध्योपासनशीलः ! स्यात्सायं प्रातः प्रसन्नधीः ॥
उदयास्तमयात्पूर्वमारभ्य विधिना शुचिः ।
कामान्मोहाद्भयाल्लोभात्संध्यां नातिक्रमेद्द्विजः ।
संध्यातिक्रमणाद्विप्रो ब्राह्मण्यात्पतते यतः ।

मनुष्य को सायं प्रातः प्रसन्न चित्त हो कर संध्या करनी चाहिए।

सूर्योदय तथा सूर्यास्त से पूर्व, काम क्रोध मोह लोभ आदि किसी भी कारण से संध्या का परित्याग नहीं करणा चाहिये। संध्या न करने से मनुष्य ब्राह्मण भाव से च्युत होता है।

शूद्रान्नं यातयामान्नं नैवेद्यं श्राद्धमेव च ।
गणान्नं समुदायान्नं राजान्नं च विवर्जयेत् ।
अन्नशुद्धौ सत्वशुद्धिर्न मृदा न जलेन वै ।
सत्वशुद्धौ भवेत्सिद्धिस्ततोऽन्नं परिशोधयेत् ।

शूद्र के अन्न, बासीभोजन, नैवैद्य, श्राद्ध, समुदायों के साझे अन्न, तथा राजा के अन्न का यथा शक्ति परित्याग करे। अन्न शुद्धि से ही सत्व शुद्धि होती है। मट्टी व जल से आत्मा

शुद्ध नहीं होता। इस लिये सदा शुद्ध अन्न का ही सेवन करना चाहिये।

असत्यं न वदेत्किञ्चिन्न सत्यं च परित्यजेत्।
यत्सत्यं ब्रह्म इत्याहुरसत्यं ब्रह्मदूषणम्।
परदारान् परद्रव्यं परहिंसा च सर्वदा।
क्वचिच्चापि न कुर्वीत वाचा च मनसा तथा।

झूठ बिल्कुल न बोले और ना ही सत्य को छोड़े, क्यों कि सत्य ब्रह्म है, असत्य तो ब्रह्म दूषण है, पर स्त्री पर द्रव्य तथा पर हिंसा मन, वचन तथा कर्म्म से कभी कहीं न करे। इस प्रकार इस प्रकरण में ८५ अध्याय के ३० से लेकर ६० श्लोकों तक सदाचार का विधान है। इसमें कई बातें साम्प्रदायिक दृष्टि से भी लिखी गई हैं, उन्हें छोड़ना चाहिए। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से सार्वभौम सचाइयों का भी अच्छे ढंग से वर्णन किया है। इसी प्रकार व्यवहार की दृष्टि से निम्नलिखित श्लोक भी द्रष्टव्य तथा स्मरणीय है।

स्त्रीसंगमे तथा गीते द्यूते व्याख्यानसंगमे।
व्यवहारे तथाहारे त्ववर्णानां च समागमे।
आये व्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत्॥

लि० पु० उत्तर भाग अ० ३। ६०। ६१।

स्त्री के साथ समागम करने, गाने, जूआ खेलने, व्याख्यान आदि के समय, लेन देन के व्यवहार में तथा रुपया

अथवा अर्थ पुरुषार्थ के इकट्ठा करने में, नित्य के आय व्यय लेन देन के लेखे में लज्जा को छोड़ कर काम करना चाहिए।

रेरेकारो न कर्तव्यस्तुंतुंकारस्तथैव च ।

लिङ्ग पुराण उत्तर भाग १८ अ० । ८९ । श्लो०

किसी भी मनुष्य को "रे रे" तथा "तू तू" शब्द से सम्बोधन कर के नहीं बुलाना चाहिए।

इतिहास तथा अन्य विद्यान्वेषण में व्यग्र विद्वानों के लिये भी लिङ्ग पुराण के निम्नलिखित स्थल विचार परम्परा में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नास्त्येवास्य विचारतः ।

ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः ॥

लिङ्ग पु० पूर्वार्ध अ० ५४ । ६७ श्लोक

वैज्ञानिक विचार शील लोगों की दृष्टि में इस सृष्टि में न तो जल का नाश होता है और न इस की वृद्धि होती है।

(ख) इसी प्रकरण में षट्ऋतुओं का वर्णन वैदिक नामों के साथ किया गया है। मित्र वरुण शुचि शुक्र विश्वावसु आदि नामों के प्राकृतिक विज्ञान की दृष्टि से क्या अर्थ हो सकते हैं; उसका थोड़ा बहुत निर्देश यहां उपलब्ध होता है।

नवयोजन साहस्रो विस्कम्भः सवितुः स्मृतः ।

त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मंडलस्य प्रमाणतः ॥

सूर्य का विष्कम्भ नौ हजार योजन है मण्डल के परि-

माण से उस का विस्तार तिगुना है।

लिङ्ग पुराण के ६६ अध्याय में अग्निविद्या का वर्णन किया गया है। कठोपनिषद् में नचिकेता ने द्वितीयवर से जिस अग्नि विद्या के सीखने की इच्छा प्रकट की है, उस का थोड़ा बहुत वर्णन यहां मिल जाता है।

लिङ्ग पुराण अध्याय २४ में "परिवर्त" शब्द का निश्चित अर्थ मालूम हो जाय तो भारतवर्ष के इतिहास तथा संस्कृत साहित्य के विकास पर काफी प्रकाश डल सकता है।

लिङ्गपुराण पूर्वभाग अध्याय ४४ में नदियों का वर्णन जाम्बूनदी स्वर्णोदका आदि नाम से किया गया है और अंत में इसी प्रकरण को—

यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम्।
पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः ४८ श्लो०

जो आदमी पञ्चनद में स्नान कर जप्येश्वर की पूजा करता है वह बिना किसी सन्देह के शिव पद को पाता है।

इस श्लोक से समाप्त किया गया है। यहां पञ्चनद का क्या अर्थ है? यदि पञ्जाब अर्थ माना जाय तो इन नदियों के विषय में जिज्ञासा का भाव पैदा होता है। इन नदियों के इस पुराण में यह नाम हैं। यह महादेव की जटा से निकली हैं, जटादेश, इसी जटादेश से वृषध्वनि, जाम्बूनदी स्वर्णोदका आदि नदियां निकलती हैं।

(घ) न विषं कालकूटाख्यं संसारो विषमुच्यते ।

८६ अ० लि० पु० ५ मा० ५ श्लो०

कालकूटादि विष विष नहीं हैं। संसार ही विष है।

कालकूट नाम से प्रसिद्ध विष कोई अलौकिक चीज नहीं है, यह संसार का ही नाम है।

इसी प्रकार सृष्टि वर्णन के प्रकरणों के विशेष मनन से प्रश्न पैदा होना है कि वराह अवतार हिरण्यकशिपु तथा त्रिपुर को एक पुर बनाने की दन्त कथाओं का असली भाव क्या है? क्योंकि यदि इन को जीवित जागृत पुरुष या देश विशेष मानें तो इनके सम्बन्ध में लिखे हुए वर्णन असम्भव मालूम होते हैं। इस प्रकरण को हम निम्न लिखित श्लोकों के साथ समाप्त करते हैं।

इन श्लोकों में यह वर्णन किया गया है कि किस प्रकार मनुष्य पहले पहाड़ों और समुद्र के तटों पर रहते थे फिर वृक्षों में, फिर शहर में फिर क्रमशः घर बना कर रहने लगे। साथ ही इन श्लोकों में यह भी वर्णन किया गया है कि किस प्रकार मनुष्य समाज ने धीरे २ अपनी जीविका के साधनों में परिवर्तन किए। सारे उद्धरण को छोड़कर कुछ पंक्तियां पाठकों के सामने पेश करते हैं:—

(१) "पर्वतोदधि वासिन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः।" १९

(२) "प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः॥" २२

(३) "द्वन्द्वैः संपीड्यमानाश्च चक्रुरावरणानि तु ।
कृतद्वन्द्वप्रतीघाताः केतनानि गिरौ ततः ॥ "
पूर्वं निकामचारास्ता ह्यनिकेता अथावसन् ।
यथायोगं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन्पुनः ॥"

लिं० पु० अध्याय ३९ । श्लोक । ३३ । ३४ ॥

(क) "ईश्वर की बनाई हुई मनुष्य प्रजाएं पर्वत और समुद्रों के प्रान्त भागों में रहती थीं। उनके घर मकान आदि कुछ न थे।"

(ख) "इस के बाद कुछ समय बीतने पर, वे वृक्षों के आश्रय में, उन्हें ही अपना घर समझ कर, रहने लगे।

(ग) "सुख, दुख, शीत, गर्मी आदि, से सताये जाने पर उनसे बचने के लिये, वही मनुष्य कुछ समय बाद मकान आदि बना कर उनमें रहने लगे।

पहले मनुष्य बिना घर वार के टोलियां (निकाय) बना कर रहते थे परन्तु धीरे २ अवस्थायें अनुकूल होने पर आवश्यकताएं बढ़ने पर घरबार बना कर रहने लगे।

समाज के विकास का इतिहास जानने वालों के लिये यह उद्धरण बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। युरोपियन साहित्य की भांति यहां भी मनुष्य समाज की Arborial Stage (वृक्षों में फलादि पर निर्वाह करने की स्थिति) का वर्णन मिलता है।

इस प्रकार की कई पहेलियां पाठकों के सामने रखी जा

सकती हैं परन्तु स्थानाभाव तथा विषयान्तर होने से इसे हम यहीं समाप्त करते हैं।

उपसंहार

लिङ्ग पुराण की श्लोक संख्या के विषय में विशेष मतभेद न होने के कारण, इस विषय में कुछ न लिखकर, अपने प्रस्तुत समालोचनात्मक विवरण को समाप्त करते हैं। इस समालोचनात्मक विवरण का उद्देश्य यही है कि लिंग पुराण के विषय में लोगों को यथार्थ ज्ञान कराया जाय।

लिंग पुराण का अनुशीलन करने के बाद हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि लिंग पुराण धर्म-ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। इस में आलङ्कारिक ढंग से, सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। बीच २ में व्यवहारोपयोगी बातों का भी वर्णन होने से हम इसे किसी अंश तक व्यवहारिक नीति ग्रन्थ भी कह सकते हैं। आशा है उदार पाठक, इस समालोचना पर उदारता पूर्वक विचार करेंगे।

श्रीमद्भगवद्गीता

ले०—श्री स्वामीसत्यानन्द जी महाराज

अठारह अध्याय महात्म्य सहित

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दू-साहित्य-सागर में बहुमूल्य रत्न है। गीता के वाक्य बड़े अनमोल हैं। इसका अध्ययन करके मनुष्य तृप्त हो जाता है, धर्म-जगत् में फिर उसे जानने योग्य कुछ अधिक बात नहीं रहती। ऐसी उत्तम पुस्तक का श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने सरल भाषानुवाद, हिन्दी भाषा में किया है जिस से हिन्दी पाठकों को लाभ हो। जिन्हों ने कभी स्वामी जी की अमृत कथा को श्रवण किया है, वे अनुमान कर सकते हैं कि उनकी रचना कितनी सुन्दर, कितनी सरल, कितनी रसीली तथा कैसी सारयुक्त होगी। आपने आजतक ऐसी सुन्दर टीका गीता पर न देखी होगी। बड़ा साइज, पृष्ठ संख्या ५००, टाईप मोटा, सुनहरी पक्की जिल्द, कागज बढ़िया, इन गुणों के अतिरिक्त सब से बड़ा गुण यह है कि सारी पुस्तक दो रंगों में छपी है। देखते ही हृदय ग़द्गद् हो उठता है। मूल्य १) सस्ता संस्करण ॥) उर्दू अनुवाद ॥-)

मृत्यु और परलोक

(मरने के समय क्या होता है)

लेखक श्रीनारायण स्वामी जी।

मृत्यु का वास्तविक रूप, मृत्यु दुःखप्रद क्यों प्रतीत होती है, मरने के बाद क्या होता है, प्राण छोड़ने के समय

प्राणी की क्या हालत होती है, भूत प्रेत क्या हैं, एक योनि से दूसरी योनि तक पहुंचने में कितना समय लगता है, जीव दूसरे शरीर में जाता क्यों है, आदि कई महत्वपूर्ण प्रश्नों पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। कृष्णदेवी और राधाबाई (१२ वर्ष की दो बाल बिधवाओं) की दुःख भरी कहानी पत्थर दिलों को भी मोम कर देने वाली है। जयसिंह, रामदत्त सन्तोष कुमार आदि की आत्म कथाएं भी रोमाञ्चकारी हैं। कई सुन्दर, शान्तिदायक गीत भी दिये गये हैं जिन्हें विशेषकर ऐसे समय में, जब परिवार में दुर्भाग्य से मृत्यु होने या ऐसी ही किसी अन्य आपत्ति के आने से वे दुःखों में फंसे हों, पढ़कर शान्ति उपलब्ध की जा सकती है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। मूल्य केवल ॥≠) सुनैहरी जिल्द १) उर्दू ॥)

...आनन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
क्रमांक 2887
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरु

आनन्द संग्रह

लेखकः— श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज अपने समय के आदर्श सन्यासी हैं। आपके व्याख्यान बहुत सारगर्भित परन्तु साथ ही अत्यन्त सरल होते हैं, और प्रत्येक स्त्री-पुरुष की समझ में आ जाते हैं। इस पुस्तक में कल्याणके साधन, उदार शील बनो, अभ्यासी बनो विचार शील बनो, ईश्वर भक्ति, रोग की औषधि, जीवन यात्रा, सत्संग की महिमा, आर्य्यसमाज को चेतावनी आदि, स्वामी जी के कई धर्मोपदेश संग्रह किए गए हैं। पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है मानो प्रत्यक्ष स्वामी जी

। व्याख्यान श्रवण कर रहे हों। तीसरी बार छपी है। इस रल, सुबोध, सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल १।) उर्दू ॥)

सत्योपदेश माला

लेखक श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज।

आर्य समाज के उपदेशकों में निःसन्देह स्वामी जी का स्थान बहुत ऊंचा है। उनकी मधुर वाणी में वह रस है, कि हजारों नर नारी उनके उपदेशों को सुनकर एक बार तो अवश्यमेव चित्र-लिखित से होजाते हैं। उनके भाषण में सबसे बड़ी खूबी यह है कि वेदों, उपनिषदों तथा अन्य शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को ऐसी सरल तथा ओजस्विणी भाषा और प्रचलित शैलियों से स्फुट करते हैं कि हर कोई समझ सके। इस पुस्तक में स्वामी जी के मुख्य २ व्याख्यान एकत्र किए गए हैं। लेखन शैली इतनी मनो मुग्धकर, हृदय में चुभने वाली और सरल है कि सर्व साधारण आसानी से समझ सकते हैं। छपाई शुद्ध सुन्दर स्वच्छ, काग़ज़ बढ़िया, टाइप मोटा, तीसरा संस्करण। मूल्य १) उर्दू ॥)

दयानन्द वचनामृत

लेखक—स्वामी सत्यानन्द जी महाराज। २

इसमें ऋषि के जीवन चरित्र तथा उनके अनेक ग्रन्थों से लगभग २ विषयों के वाक्य जमा किए गए हैं। यदि यह जानना हो कि फलां विषय में ऋषि की क्या सम्मति है तो तुरन्त इस पुस्तक को देखें, बड़े परिश्रम से लिखी गई है ॥≈)

स्वाध्याय के लिये अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें

सत्यउपदेश माला [स्वामी सत्यानन्द जी] उर्दू ॥i) हिंदी १)

आनन्द संग्रह स्वामी सर्वदानन्द जी, उर्दू में ॥i) हिन्दी १)

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश स्वामी सत्यानन्दजी कृत १॥)

सन्ध्यायोग—हिन्दी ।-) उर्दू ।)

सन्ध्या रहस्य ।≡)

हमारे स्वामी ।=)

भक्ति दर्पण ॥=)

गीता १)

आस्तिकवाद २॥)

अद्वैतवाद १॥)

भक्तिदर्पण—भक्ति मार्ग के सब साधन इस पुस्तक में बतलाये गये हैं ॥=)

मृत्यु और परलोक १)

व्याख्यान माला ॥=)

गड़गज्ज भजन माला ≡)॥

ईषोपनिषद् का स्वाध्याय ॥।=)

सीता बनवास ॥।-) उर्दू ॥-)

भक्ति प्रदर्शन

ओंकार उपासना

वैरागीवीर

शिवपुराणालोचना

गीतागुटका

वराहपुराणालोचना

आप बीती

गरुड़ पुराणालोचना

भजनामृत

सुक्ति सुधा

प्राणायाम विधि

अमीर संसार

पंजाब बीती

वीरांगना

आर्य्याभिविनय २ भाग

आर्य्यसमाज क्या है ?

पारस ॥=) कृष्ण सुदामा

आर्य्य समाजिक धर्म

दयानन्द वचनामृत

अदर्श पत्नी ॥i) विवाहितप्रेम

राजपाल ऐंड सन्ज़

आर्य्य-पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम, अनारकली, लाहौर

हवन सामग्री धूप आदि भी इस से मिल सकती हैं।